प्रकाशक :
मंत्री अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ
राजघाट, काशी

पहली बार १
दिसम्बर : १९५
मूल्य : पचहत्तर नये पैसे

मुद्रक :
बलदेव दास
संसार प्रेस
काशीपुरा, वाराणसी,

प्रकाशकीय

पिछली बार इन्दौर के रास्ते में विनोबाजी जब उत्तर प्रदेश में पधारे, तो उन्होंने हमारे सर्वोदय कार्यकर्ताओं की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली कि वे प्रतिदिन अपराह्न में कार्यकर्ताओं के मार्ग-दर्शन के लिए एक घण्टे का समय देंगे। बागपत (मेरठ) से लेकर आगरा तक यह उत्तम कार्यक्रम सतत चलता रहा। बीच में केवल दो-चार दिन का ही व्यतिक्रम हुआ।

उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं के बीच विनोबा के ये प्रवचन यद्यपि उत्तर प्रदेश में हुए हैं तथापि ये केवल उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं के लिए ही नहीं हैं। प्रसंग-वशात् कहीं-कहीं उत्तर प्रदेश का नाम आया है पर उनका क्षेत्र उत्तर प्रदेश तक ही सीमित नहीं है। ये सभी कार्यकर्ताओं के लिए उपयोगी ज्ञानवर्धक और प्रेरक हैं।

कार्यकर्ताओं में क्या गुण होने चाहिए, उन्हें अपने दोषों का परिहार किस प्रकार करना चाहिए, नये कार्यकर्ताओं को अपनाने के लिए, उन्हें आगे बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए, गुणदर्शन कैसे करें स्वाध्याय कैसे करें उत्साह का संवर्धन कैसे करें विचारों की सफाई कैसे करें सर्वोदय के कार्य में गहराई में कैसे उतरें छोटे-से क्षेत्र से 'जय-जगत्' तक कैसे पहुँचें पक्षमुक्त समाज का निर्माण कैसे करें सत्तानिरपेक्षता की ओर कैसे बढ़ें विपक्षत्व को कैसे तोड़ें रचनात्मक कार्य को कैसे आगे बढ़ायें शान्ति-सेना और सर्वोदय-पात्र के विकास के लिए क्या करें—ऐसे एक नहीं अनेक मुद्दों पर विनोबा ने अपने गम्भीर और ठोस विचार व्यक्त किये हैं जगह-जगह पर अपने जीवन की घटनाओं को पुट देते हुए।

हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक सर्वोदय के प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। श्री रामकृष्ण मेहरोत्रा तथा श्रीमती कांता-बहन और हरविलास बहन ने इन प्रवचनों के संकलन में जो सहायता की है उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

•

अनुक्रम

•

दिलों की सफाई के लिए आवाहन

सोचता हूँ, उत्तरप्रदेश की आबादी पौने सात करोड़ के करीब है। इतने बड़े देश दुनिया में और कौन होंगे? इस तरफ चीन और जापान और उस तरफ अमरीका और रशिया—ये चार देश ही इससे बड़े हैं। वैसे पाकिस्तान भी है। लेकिन वह दो हिस्से में बँटा हुआ है। एक जगह इतनी उसकी आबादी नहीं है। इस प्रकार यह एक स्वतंत्र देश होने के लायक प्रदेश है। फिर भी सरकार ने इसे एक प्रांत मान लिया तो हमने भी वही मान लिया।

लोक-क्रांति संख्या-बल पर निर्भर नहीं

इतने बड़े प्रदेश में लोक-क्रांति का कार्य करने के लिए एक छोटी-सी १ १२ १५ आदमियों की समिति हो तो उसका अर्थ यही है कि या तो वे सबके सब लोग ऐसे नेता हैं जिनके शब्दों का वजन आम जनता पर पड़ता है। या फिर यह केवल एक अहंकार की बात है, जो केवल मिथ्या है। राज्य चलाना एक बात होती है और लोक-क्रांति करना तथा जड़ बदलना दूसरी बात। वह भी बड़ा है पर वह बहुत बड़ी बात नहीं है। सरकार का एक नौकर-वर्ग होता है और लोग उसे टैक्स देते हैं। बदले में कानून और लोगों को संरक्षण प्राप्त होता है। इसी तरह सरकार का काम चलता है। मुट्ठीभर अंग्रेजों ने भारत पर राज्य चलाया था। वह सिर्फ राज्य चलाने की बात थी वह भी दूसरे लोगों द्वारा। लेकिन लोक-क्रांति का काम ऐसे-वैसे चंद लोगों द्वारा चल सकता है। लोक-क्रांति का काम लोक-हृदय में प्रवेश का निश्चय कर लोगों के पास पहुँचना होता है यह दूसरी बात है।

इलाहाबाद की मिसाल सामने है। वे यहाँ घूमे, पर सात जिम्मेदार

का प्रदेश नक्शे में दिखाया गया है। मुश्किल से हिन्दुस्तान के तीन-चार जिलों के बराबर वह प्रदेश होगा। वह लोक-क्रांति का कार्य था। उसके द्वारा लोक-हृदय में प्रवेश हुआ। वहाँ गौतम बुद्ध की मिसाल लीजिये। वे गया से लेकर बर्मा तक कोई सात-आठ जिलों में ३९ साल तक घूमे, तो उनका लोक-हृदय में प्रवेश हुआ। इस जमाने में प्रचार के साधन बढ़ गये हैं। विज्ञान बढ़ गया है। सद्‌विचार फैलते हैं तो उसके साथ साथ कुविचार भी फैलता है। वही हाल उस समय भी था। पर लोक-हृदय में प्रवेश कर लोक-क्रांति करना और बात है। हमारे पास कार्यकर्ता हैं खादी ग्रामोद्योग के, गांधी-निधि के, भूदान के। सब मिलाकर गिनती करें तो काफी संख्या है। लेकिन लोक-हृदय में प्रवेश करने के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है, उनके अभाव में काम नहीं बनेगा।

हम कुछ रचनात्मक कार्य करते हैं। लेकिन करते क्या हैं? ४ करोड़ में से २ करोड़ बिलकुल बुनियादी रचनात्मक काम करते हैं। उसके बगैर देश चल ही नहीं सकता। वे यथावत् उत्पादन का काम शरीर-श्रम करके, पसीना बहाकर निरंतर तन्मय होकर करते हैं। इतनी बड़ी भूमि-माता की सेवा करनेवाली रचनात्मक कार्यकर्ताओं की जमात है।

खादी का काम १९१९ में शुरू हुआ। उसे ४२ वर्ष हुए। वह देखी है। देश में फी आदमी २ गज कपड़े की जरूरत मानें तो ८ करोड़ गज की जरूरत है। लेकिन हम करीब १ १२ करोड़ गज खादी बना पाते हैं। यानी १½ या १½ प्रतिशत हुआ। अब ४२ साल में वह १½ प्रतिशत उत्पादन होता है तो सोचने की बात है कि क्या वह ठीक है? हम दीवार के सामने खड़ा तो नहीं रहे हैं?

गौतम बुद्ध की बात है। गौतम बुद्ध के चार शिष्य बुद्ध की मृत्यु के बाद गुरु के नाम से विचार प्रचार करने निकले। चारों में से एक ने कहा : "मेरे गुरु ने कहा है कि मन सत्य है और सृष्टि मिथ्या है।" दूसरे ने कहा : "मेरे गुरु ने सिखाया है कि सृष्टि सत्य है और मन मिथ्या है।

तीसरे ने कहा : "मेरे गुरु ने जो कुछ कहा उसका सार है कि सृष्टि भी मिथ्या है और मन भी मिथ्या। कुछ है ही नहीं, मन शून्य है।" चौथे ने कहा : "मेरे गुरु के कहने के अनुसार यह सृष्टि भी सत्य है और मन भी सत्य।" इस तरह विज्ञानवाद, सर्वास्तित्ववाद और शून्यवाद आदि। वे चारों एक-दूसरे के खिलाफ प्रचार कर रहे थे। इसी प्रकार आज गांधी के चार शिष्य गांधी के नाम से देश में एक-दूसरे के विरोध में प्रचार कर रहे हैं और देश के दिमाग में 'कन्फ्यूजन' पैदा करते हैं। ये सब एकत्र होकर बैठकर समान अंश पर जोर देते, तो एक दूसरी सूरत होती। मगर वे ऐसा कहते हैं कि उनमें कोई 'सब्स्टैंशियल कामन ग्राउण्ड' जैसा कुछ भी नहीं है। तो मैं मानता हूँ कि वे गांधी के शिष्य नहीं हैं। यहाँ तक कि उनमें से कोई सज्जन भी नहीं है। सज्जनों में समानता का अंश तो होना ही चाहिए। वे समान कार्यक्रम उठा लेते तो कुछ हो सकता था। लेकिन पश्चिम से जो दलगत राजनीति आयी है, उसमें साथ बैठकर कुछ करने का बैठता नहीं है। जैसे पुराने दकियानूस वेद-पुराण माननेवाले अपने मतलब की बात निकाल लेते हैं वैसे ये भी दलगत राजनीति की पद्धति को प्रमाण मानकर चलते हैं। ऐसे नेताओं का कोई जनता पर असर नहीं होता। ऐसी अनुकूलता अभी तो नहीं दीखती। मैं मायूस नहीं हूँ। उलटा अगर सर्वत्र अंधकार हो तो दीपक को ज्यादा उत्साह होता है। हाँ, उसमें दीपकत्व, प्रकाश होना चाहिए। उसमें भी अगर अंधकार ही है, तो फिर 'सामने अंधकार है' ऐसा कहने की स्थिति ही नहीं रहती। इसलिए मैं पराश्रित वृत्ति से नहीं, अपराश्रित वृत्ति से बोल रहा हूँ।

सर्वोदय के काम के लिए गहराई में उतरिये

सर्वोदय का काम गहराई में गये बगैर नहीं बनेगा। इस विचार से जब मैं सोचता हूँ, तो आशा दिखाई देती है कि भारत के वातावरण में

चरम, अगर उसके हाथ में उसका उपयोग रहा तो वह उसे हिंसा के लिए ही करेगा। वेदांत में कहा है कि जिसे विवेक, वैराग्य आदि गुण प्राप्त हैं उसीको उसके पठन-पाठन का अधिकार है। इसी प्रकार जो अहिंसक है उसीको विज्ञान के उपयोग का अधिकार है। लेकिन आज हो यह रहा है कि अनधिकारी उसका उपयोग कर रहा है और जिसे अधिकार है वह कांप रहा है। पूछ रहा है कि हम उपयोग कैसे करें या न करें! बच्चे के हाथ में अगर छुरा दे दिया जाय तो वह क्या करेगा? वास्तव में छुरे के उपयोग का अधिकार माँ-बाप को है। हमें समझ लेना चाहिए कि विज्ञान हमारे खिलाफ नहीं है। वह आत्म रूहानी ताकत का आवाहन कर रहा है।

इसलिए हमें एक बाजू से विज्ञान का उपयोग करना होगा और दूसरी बाजू से भारत में पड़ी रूहानी ताकत की पक्का पानी होगी। इसके लिए हमें अपने दिल और दिमाग तैयार रखने होंगे। हमारा दिमाग विज्ञान के अनुकूल न हुआ तो हम गये-बीते साबित होंगे। हमें विज्ञान के उपयोग के लिए तैयार रहना होगा और दिल को रूहानी ताकत के लिए तैयार रखना होगा। मैं इस देश में नहीं सब देशों में हूँ। और हम इस देश में नहीं, सब देश में हैं" इसका अहसास रूहानी ताकत है। इन दोनों से सम्पन्न होकर हम काम करेंगे, तो कुछ कर पायेंगे। नहीं तो यही कहा जायगा कि ठीक है, कोई काम चल रहा है।

दिमाग जमाने के अनुकूल बनाइये

मुझे विश्वास और आनन्द है कि जो लोग इस काम में आये हैं उनमें से काफी लोग गिरनेवाले हैं। क्योंकि जिस चीज का सामना हमें करना है, उसके सामने हम नहीं टिकेंगे। उसका सामना करने के लिए हमें नया बनना होगा या नये मनुष्यों को स्थान देना होगा। हम भी नये मनुष्य बन सकते हैं, अगर बनना चाहें। या तो हमें नया मनुष्य बनना होगा या

नये लोगों को स्थान देना होगा। नये लोगों से मतलब है ऐसे लोग, जिनके दिमाग में किसी भी घटना से क्षोभ पैदा नहीं होता, चिंतन शुरू होता है। जैसे भारत-चीन सीमा-विवाद शुरू हो गया तो दिमाग में क्षोभ हुआ या चिंतन प्रारंभ हुआ यह देखना होगा। जिनको क्षोभ होगा, वे पुराने जमाने के होंगे।

अभी गुजरात में पेट्रोल निकला। अब पेट्रोल किसका माना जाय? गुजरात ने उस पर अपना दावा नहीं किया और भारत का माना। लेकिन आगे चलकर इस प्रकार मानना होगा कि कहीं भी पेट्रोल निकले, उसे दुनियाभर का माना जाय। अगर इसके लिए मन की तैयारी नहीं होगी तो वहां मन टकरायेंगे, विचारों की मुठभेड़ होगी, सिर फूटेंगे। इसलिए हमें दिमाग जमाने की आवश्यकता के अनुसार बनाना होगा।

हमें सोचने की जरूरत है कि क्या विचार के लिहाज से हम एक जमात हैं? यहां सर्वोदय, भूदान वगैरह नामों से इकट्ठा तो हुए हैं लेकिन क्या हम विचार की दृष्टि से एक हैं? प्रेम की दृष्टि से एक हैं? हमारा प्रेम क्षेत्र और विनोद क्षेत्र अलग अलग है। हम घर में बाल-बच्चों के साथ प्रेम करते हैं और दफ्तर में काम। विनोद तो क्लब में ही करते हैं। अगर कैमरा लेकर फोटो खींचा जाय, तो तीनों रूप अलग-अलग नजर आयेंगे—बाल बच्चों के साथ प्रेम करते हुए कृपालु, आफिस में काम करते हुए कर्मयोगी तद्रूप और विनोद करते हुए विचित्र रूप। पहचानना मुश्किल है कि क्या यह वही व्यक्ति है? इस प्रकार हमारे व्यक्तित्व के तीन टुकड़े हो गये हैं। जिनके साथ काम करना है उनके साथ प्रेम नहीं होगा तो काम कैसे बनेगा?

हमें सोचना होगा। अपना दिल रूहानियत के लिए तैयार करना होगा। रूहानियत में सब मजहबों का न्यूनतम होता है। दूसरी ओर दिमाग तैयार रखना होगा—विज्ञान के लिए, जिसमें सारी सियासत टूटनेवाली है। मैं कहता हूं कि यह जमाना आनेवाला है और हमें इसके लिए तैयार रहना है।

विचारों की सफाई कीजिये

मैं चाहता हूँ कि रोज एक विचार की चर्चा हो और उसके विचारों की सफाई होती रहे। हमें समझ लेना चाहिए कि अगर आपको राज्य सौंपा जाय तो क्या आप कांग्रेस में जैसे ग्रुप हैं वैसे आपमें नहीं होंगे? उनके अन्दर विरोध है तो आपमें नहीं होगा? आपके सामने सवाल आयेगा कि बड़े उद्योग रखने हैं या नहीं? मिलों की उन्नति करनी है या नहीं? सिन्दरी जैसे कारखाने चलाने हैं या नहीं? बड़े-बड़े बाँध बँधवाने हैं या नहीं? लश्कर अभी रखना है या नहीं? अभी भारत-चीन सीमा-विवाद खड़ा हुआ। इतने में सब घबड़ा गये। खैर, आजकल एक मजेदार बात देखने में आयी। गांधी के समय में जो बूढ़े थे सभी अहिंसा के पक्ष में थे और जो जवान थे सभी हर बात में कुछ जोश कुछ हिंसा का मात्रा रखकर जितना बन सके उतना करने की कोशिश करते थे। पर अभी ऐसा नहीं हो रहा है। अब दूसरी पीढ़ी के युवक दूसरे ढंग से सोच रहे हैं। हमारी सेना में भी अच्छे लोग हैं। वे भी दूसरे ढंग से सोचना जानते हैं। पहले मुझे नहीं ख्याल था कि सेना में कैसे लोग हैं? लेकिन कश्मीर में जाकर मुझे मालूम हुआ कि इसमें भी अच्छे लोग हैं।

मुझे संतोष है कि बापू के बाद भारत की प्रगति हुई है। विचार पक्का हुआ है और विचार बढ़ते हैं। आज हम देखते हैं कि सर्वोदय-सम्मेलन में भी उलटा हुआ है। जो बूढ़े थे कुछ जिम्मेदार थे वे हिंसा के साथ समाधान करते दिखाई देते हैं और जो जवान हैं, वे अहिंसा को जरा भी छोड़ने को तैयार नहीं। यह अच्छा है। ऐसे में विचारों की प्रगति चाहता हूँ, हिंदुस्तान का बड़ा भाग्य है। मैंने जो प्रश्न बताये उनके बारे में हमारे दिलों में सफाई हो जानी चाहिए। हमारे दिमाग अब साफ होने चाहिए, ऐसा मैं चाहता हूँ।

बागपत (मेरठ)
८-१-६

सर्वोदय-पात्र : हमारा वोट, हमारी जनशक्ति

[मेरठ के एक कार्यकर्ता श्री कृष्णकुमार खन्ना ने बाबा से पूछा कि हम जो सम्पत्तिदान, भूदान या साधनदान देते हैं, अभी अगर पार्लमेंट के मेम्बरों के पास जायें और माँग करें कि ऐसा कानून बना दीजिये कि मिलकियत ही न रहे तो वह आपकी दृष्टि से उचित होगा या नहीं? बाबा ने उत्तर देते हुए कहा :]

दान और सद्भावना दोनों साथ-साथ

अभी पंजाब के जिले में एक सभा में हमने भाषण में कहा था कि हर पार्टीवाले निर्वाचित होना चाहते हैं, हम भी निर्वाचित होना चाहते हैं। वे चुनाव में पड़ते हैं तो उन्हें खर्च करना पड़ता है। पर हम बिना खर्च किये निर्वाचित होना चाहते हैं। अगर हम भारत में एक करोड़ सर्वोदय-पात्र रखवाते हैं तो इसका अर्थ यह है कि उतने लोग आपको वोट देंगे। आजकल की चुनाव प्रणाली में जो वोट देते हैं उनमें एक पक्ष के अलावा कुछ नहीं होता। वह पत्र पेटी में डाल दिया और काम खतम। पर मैं यह नहीं चाहता। मैं तो चाहता हूँ कि लोग सर्वोदय-पात्र के जरिये रोज

प्राप्त किये क्या करेगा ? यह तो वैसी ही बात होगी कि दूध भी नहीं पिया और कुश्ती के लिए अखाड़े में उतर आये। आखिर पहलवान से कुश्ती लड़ने के लिए तैयारी करनी ही पड़ती है न ? गामा से लड़ने के लिए अधिक तैयारी करनी पड़ेगी। तभी मुकाबला हो सकता है।

सहानुभूति प्राप्त करना एक निश्चय तरीका है। आपके पास लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने का तरीका है। हमें तो यही सोचना चाहिए कि लोगों का मन हासिल करें। हमें बुराई खतम करनी है न ? तो बुराइ दूर करने के निमित्त लोगों के पास उसके इलाज पूछने के लिए उसी भाँति जाना चाहिए, जिस भाँति भीष्म पितामह के पास अर्जुन पहुँचा। भीष्म पितामह ने उन्हें खुद ही बता दिया कि उन्हें कैसे हराया जा सकता है।

पार्लमेंट से माँग फिजूल काम

इस दृष्टि से पार्लमेंट में जाकर माँग रखना हम फिजूल का काम मानते हैं। यह तरीका ठीक नहीं। दुनिया में भेदभाव मिटाने के लिए और भी तरीके चलते हैं। कुछ लोग ढकोसला भी करते हैं। उनमें से एक है रूस का तरीका। उन्होंने समता लाने के वास्ते क्रांति की। फिर भी वहाँ वेतन में १ और ४ का अनुपात है। यह तरीका असफल सिद्ध हुआ है। किन्तु यहाँ भूदान हुआ, सम्पत्तिदान हुआ और लोगों ने आत्मविश्वास का विसर्जन किया है। दुनिया में ऐसा कहीं हुआ हो, ऐसा आपने सुना है ? पर यहाँ यह हुआ है। इसलिए मैं पार्लमेंट में जाकर अपनी बात रखना फिजूल समझता हूँ।

संख्या-बल का असर भी होता है। पर कुछ जगह और कुछ परिस्थितियाँ ऐसी भी होती हैं, जहाँ संख्या-बल काम नहीं करता। व्यासजी की कथा आप जानते ही होंगे। महाभारत हुआ। कौरव, पांडव सभी उनके सम्बन्धी थे। उन्होंने उनसे युद्ध न करने के लिए समझाया। पर वे तो लड़ने को ठाने बैठे थे। जब व्यासजी की बात नहीं मानी गयी, तो उन्होंने

वहाँ रहना मुनासिब नहीं समझा और तपस्या करने केदार-बद्रीनाथ चले गये। इधर लड़ाई में भगवान छोड़ने की नौबत आयी। उससे दुनिया नष्ट होनेवाली थी। व्यासजी उसके दुष्परिणाम जानते थे। उनसे न रहा गया वे समझाने के लिए आ गये। एक वही अकेला ऐसा आदमी था जो उस अस्त्र को वापस खींचने के लिए अर्जुन को राजी कर सका—और उस समय जो संकट आनेवाला था वह टल गया। वह एक ही हस्ती और एक ही शक्ति थी जो काम आयी। हाँ ऐसी ही कोई विलक्षण शक्ति हो तो आपकी-हमारी बात भी सुनी जा सकती है। हमारे पास कौन ऐसा है? पर अगर यहाँ लोकमत की ताकत मजबूत है और उसीकी चलती है तो पहले आपको तैयारी करनी चाहिए। इसलिए जब मैं सर्वोदय-पात्र की बात करता हूँ, तो वह एक पात्र रखनेभर की बात नहीं उसमें जनमत-संग्रह करने की बात है। यह सिर्फ मिले-जुले प्रयास से संभव है।

पंजाब की सफलता

पंजाब में गांधी-निधि खादी तथा भूदान के कार्यकर्ताओं ने मिल-जुलकर सम्मिलित प्रयास किया है तो वहाँ कुछ सफलता मिली है। भारत में पंजाब में सबसे अधिक खादीवालों का प्रवेश है। भारत में कुल १ लाख गाँवों से उनका संबंध है जिनमें अकेले पंजाब में ही १२ हजार कार्यकर्ता गाँवों से संबंध रखते हैं। सभी तरह के कार्यकर्ता गाँव-गाँव फैले हैं। पर हम सोचते हैं कि औसतन २ घरों में प्रवेश कर सकें तो काफी संबंध हो जायगा और काम बनेगा। इसलिए हमने पंजाब के लोगों को तीन महीने का समय दिया है। जालंधर में हमने उन्हें बुलाया है। वहाँ सात दिन तक उनका कैंप लगेगा और उनसे बातचीत की जायगी।

इसके अतिरिक्त मैं सरकारी और के बाहर एक गैरसरकारी [illegible] विभाग खोलना चाहता हूँ। यह व्यापारियों तथा उद्योग धंधों के सामने बाहर से भी काम करेगा। राजनीतिक दलों से भी दूर रहकर काम

करेगा। मैं मानता हूँ कि ५५ हजार लोगों को काम दे सकूँ, तो यह काफी होगा। तभी हम कह सकते हैं कि हमने कुछ किया। एक ओर यहाँ यह बेकारी के हल करने का सवाल होगा यहीं कुछ रचनात्मक सत्व, अहिंसा और नैतिकता उत्पन्न कर देश की व्यवस्था कायम सकेगा, ऐसा हम मानते हैं।

गाँवों के लिए चार जरूरी बातें

खादी के कार्यकर्ता और खादीवाले खादी का काम करते हैं। गाँव में जाकर भी वे काम करते हैं। पर मैं इसे कुछ खास काम हुआ ऐसा नहीं मानता। गाँव की योजना अलग होनी चाहिए। स्वावलम्बन होना चाहिए। गाँव के लोग एक-दूसरे की सहायता करें यह भी हमें देखना है। इस तरह गाँव में हमें क्या-क्या करना है, इसलिए चार बातें मैं जरूरी समझता हूँ।

१ गरीब, निर्धन बीमार, दुःखी बेबस बूढ़े और अपाहिजों की सहायता।

२. भूदान सम्पत्तिदान का विचार घर-घर पहुँच जाय।

३ सर्वोदय-पात्र के जरिये गाँव के कम-से-कम २५ घरों में हमारा प्रवेश हो। घरों में कार्यकर्ता पात्र रखकर प्रेमपूर्ण मैत्री के संबंध कायम करें तो लोग सर्वोदय-पात्र में प्रतिदिन कुछ-न-कुछ डालना पसंद करेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

४ अन्य साधन। अब मैं सम्पत्तिदान के बारे नहीं चाहता। लोग उसे खुद अपनी समझ से खर्च करें, यह तो अच्छी बात है ही पर मैं यह चाहता हूँ कि जितना दान करना है लोग मुझे उसका एक साल का 'एग्रीमेन्ट' में दे सकते हैं, फिर आप जैसी इच्छा हो कर लें। जैसे सरकार का टैक्स आदि दिये जाते हैं, वैसे ही लोग हमारे शांति-सैनिक तथा सर्वोदय-पात्र के कार्यक्रम को अपना मान लें और दूसरी ओर उन्हें निरपेक्ष सेवा मिले तो काफी काम हुआ ऐसा मैं मान लूँगा।

मैं किसी आधार को रखकर ऐसी बात करता हूँ। गाँवों में कहाँ पहुँच सकते हैं तथा कहाँ पहुँचे हैं उसका आधार मैं देता हूँ। क्योंकि आधार के बिना काम नहीं होगा और काम के बिना आधार कहाँ! दोनों में गहरा सामञ्जस्य है। एक-दूसरे के बिना काम करने से काम गड़बड़ा जायगा।

कार्यकर्ताओं का आधार

कार्यकर्ताओं को आधार जरूरी है। उनको वह मिले तभी वो काम हम निश्चित करें यह सम्भव है। इस विषय में एजेन्सी की बात मेरी समझ में आती है। उसी एजेन्सी की बात मैं करता हूँ। पंजाब में इस प्रकार की एजेन्सी स्थापित हो गयी है। वहाँ प्रदेश कांग्रेस-अध्यक्ष श्री दरबारा सिंह को एक थैली भेंट की गयी थी। वह उन्होंने मुझे भेंट कर दी। तो मैंने कहा "इसका मुझे क्या करना है? इसका उपयोग तो आप लोग करेंगे। मैंने यह थैली वहीं जमा कर दी है। इसी प्रकार लोग इसमें देंगे। संस्थाएँ सहायता करेंगी। यह एजेन्सी होगी। सर्वोदय-मंडल के अन्तर्गत यह कमेटी और यही कार्यकर्ताओं का आधार होगा।

दूसरी बात कार्यकर्ताओं और सेवकों के संबंध में है। बहुधा हमें गलतफहमी हो जाती है। कोई काम नहीं हुआ है तो वह हुआ है, ऐसा हम मान लेते हैं। दूसरी ओर जो होना है वह नहीं हो पाता। जो गलतफहमी हो वह दूर होनी चाहिए। आपस में मिलकर ऐसा किया जा सकता है।

अन्त में मैं पुनः आपसे कहता हूँ कि लोकमत-संग्रह करने की बात लेकर मैं आपके पास आया हूँ। सम्पर्क बढ़ाने की बात है। वह सर्वोदय-पात्र के जरिये ही सम्भव है। वह आपको करना है।

सिवाया (मेरठ)
२-३-६१

उत्साह कभी कम न हो

आप लोगों को मालूम है कि अभी ग्राम-सेवा-संघ का विधान बना। जहाँ तक मुझे मालूम है, उसमें जिलों को स्थान दिया गया है, प्रान्त का कोई महत्त्व नहीं। यह सुन्दर विचार है। खासतौर पर उत्तर प्रदेशवालों पर यह बहुत लागू होता है। जहाँ तक संभव हो, हम स्थानिक कार्यक्रम लागू कर सकें, तो बहुत अच्छा होगा।

पंजाब में नयी शक्ति का उदय

पंजाब में मेरी यात्रा अच्छी चली। वहाँ लोगों ने इस सम्बन्ध में प्रश्न किया। यहाँ तो एक महीने के लिए जैसा ही हुआ है, क्योंकि भाग तय हो गया है। जिलावार मेरे सामने कोई सवाल नहीं। यहाँ प्रदेशवालों ने ही यह तय किया है। पर पंजाब में मैं कहाँ किस जिले में जाना चाहता था, जाता था। कोई नहीं जानता था कि पूर्व जाऊँगा या पश्चिम। वहाँ जिलेवालों से ज्यादा सम्पर्क रखता था। वहाँ मैंने जिलेवालों के लिए किताबों का एक-एक भण्डार खुलवाने का काम किया। स्थानीय लोगों से कहता कि आप लोगों को मुझे इतने रुपये का दान देना है। आप एक-दो दिनों में उतने रुपयों का प्रबन्ध कर के मेरे पास आते। तब मैं उनसे पुस्तक-भंडार खोलने की बात करता। अगर पास में पचास पुस्तकें न होतीं, तो नजदीक के नगर से मँगवाकर उसे खोलकर आगे बढ़ जाता।

मैंने यहाँ सर्वोदय-पात्र पर अधिक जोर दिया। मैं मानता हूँ कि यह विचार यहाँ लोगों को बहुत जँचा और भारी काम हो रहा है। सर्वोदय पात्र से जो आय प्राप्त होती है उससे व्यय की व्यवस्था कर रहे हैं कि एक हजार जिलेवाले पूरे समय पर लग सकते हैं और बाकी बचा दो-हजार सब

मेरा-सब को भेज दिया जाता है। सम्पत्तिदान सबका सब जिले में ही रह जाता था। उस सम्बन्ध में मैंने वहाँ कहा कि वह ठीक ढंग से लिया जाय और हिसाब भी ठीक रखा जाय। किन्तु अब यह भी कहता हूँ कि ५ प्रतिशत प्रदेश को दे दो। बाकी जिला खुद खर्च करे।

तीसरी बात जो मैंने वहाँ बतायी वह स्वामी रामकृष्ण परमहंस से मुझे मिली है। बचपन में मैं उनकी किताबें पढ़ा करता था और भाव से पढ़ता था। जो बात उनसे मुझे सीखने को मिली, वह है नकद धर्म। नकद धर्म के अन्तर्गत सिर्फ 'नकद दान दो' इतनी ही बात नहीं आती। इसका मतलब यह है कि जो करना है, अभी होना चाहिए, फल भी उसी समय मिलना चाहिए। सम्पत्तिदान के मामले में पहले दूसरी बात चलती थी। लोग कुछ अपनी मर्जी से सहायता-कार्य में खर्च करते थे। अगर कोई भाई चाहे तो कुछ नकद भी दे सकता था। पर हमने बताया कि जितने का आप सम्पत्तिदान देते हैं उतने हिसाब से नकद एक साल का आपको देना है तभी वह सम्पत्तिदान हुआ ऐसा माना जायगा।

खादी-कार्य विकेन्द्रित रूप में चले

इस प्रकार पंजाब में कुछ काम हुआ। लोग दे रहे थे। कार्यकर्ताओं को संतोष मिला और अब उन्हें माँगने की प्रेरणा मिलती जाती है। पुस्तक-भण्डार भी काफी खुले हैं। जो काम वहाँ हुआ उसमें पारिवारिक भावना आयी है। [illegible] गांधी निधि के बहुत सारे कार्यकर्ता हमारे साथ आये, जो हमारा काम कर रहे हैं। दूसरी बार वहाँ के खादी-कार्यकर्ताओं ने भी काफी साथ दिया है। वे सारा पूरा सहयोग दे रहे हैं। यह नयी शक्ति वहाँ आयी है। मैंने [illegible] कहा कि मान लो अन्तरराष्ट्रीय स्थिति खराब हो जाय, तो क्या हम [illegible] योजना नहीं [illegible] सवाल खड़ा हो सकता है। हमारे मुल्क की [illegible] योजना [illegible] शान्तिकालीन योजना है। परिस्थितियाँ ऐसी ही [illegible] हम अपने काम में [illegible] करने चले जायेंगे, इसका ध्यान रखा

गया है। अगर शांति को खतरा पहुँचता है, तो उस हालत में सोचना पड़ती है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि क्या खादी का काम और क्या ग्रामोद्योग, कोई स्वावलंबी नहीं है। सरकारवाले इन्हें सहायता देते चले आ रहे हैं। यह उनकी सज्जनता है कि वे उसे बन्द करना नहीं चाहते। फिर भी हमारे लिए सोचने की बात है कि स्वावलंबन जरूरी है या नहीं? और हमें क्यों सहायता दें और कब तक देता रहे?

अगर उनके स्थान पर मैं होता तो उसे जरूर बन्द कर देता। कहता: "भाइ, गाँव-गाँव बनाओ और स्वावलंबन पचाना है।" पर वे हमारे लिए कठोर न हो सके। आदमी खुद अपने लिए कठोर हो सकता है दूसरे के लिए नहीं; क्योंकि वह अपने को बाँधकर कसौटी पर अधिक आसानी से कस पाता है। आदमी इतना कठोर हो सकता है कि जो उसने किया उसे तोड़ भी सकता है। फिर भी अपने हाथों से अपना किया-कराया समाप्त करके आगे बढ़ना बहुत मुश्किल का काम होता है। लेकिन बाबा ने यह भी किया है। अपनी जबान से ही गुरु-समितियाँ तोड़ दीं। यह काम विरले ही मनुष्य कर सकते हैं। जो कर पाते हैं वे 'नेता' कहलाते हैं और अच्छे नेता होते हैं। एक लकीर पर चलना उन्हें नहीं भाता और अपनी बनायी चीज को तोड़ने में मोह नहीं होता।

तो खादी का काम अब इस तरह नहीं चलनेवाला है। अगर ऐसी दशा रही, तो कभी-न-कभी उसे तोड़ना ही होगा। खादी का काम अब हमने आधार माना है। यह आधार तोड़े बिना क्रांति का पनपने का काम नहीं हो सकता। अब उसे हमें विकेन्द्रित करके करना होगा। सबके अपनी सहयोग और स्वावलंबन के आधार पर यह काम करना होगा। एक-दूसरे पर विश्वास करना ही पड़ता है। मैं सोचता हूँ कि सर्वोदय मंडल यह काम क्यों न करे। इसमें स्थानीय भाइ होंगे। हमें अपना काम सर्वोदय मंडल को सौंपना होगा। हम मानते हैं कि गलतियाँ होती हैं पर प्रमाद यहीं से निकला है और भला यहीं से निकलता है यह भी सच है। पर जो

कुछ होगा, अच्छा ही होगा। ऊपर से तो हम मानकर समर्थ के अनुसार उसे थाम सकते हैं पर नीचेवालों को भी अपने पैरों पर खड़ा रहने दो यही हम करते हैं।

राजस्थान में उत्साह की कमी

पंजाब में मैंने इसी तरह काम करने का प्रयत्न किया। वहाँ कुछ सफलता मिली ऐसा हम मानते हैं। वहाँ मैं घूम रहा था तो सोचा राजस्थान जाना चाहिए। यहाँ पहले भी घूम आया था। अचानक यहाँ पहुँच गया सिर्फ दो दिन पहले सूचना दी। जैसे कोई अचानक धावा करता है, उसी तरह अठारह महीने बाद मैं यहाँ पहुँच गया। प्रगति नहीं की थी उन्होंने। उत्साह नहीं पाया मैंने उनमें। यदि मैं कहूँ, तो मेरा आंदोलन यहाँ खतम है। उत्साह कायम रहना चाहिए। बाबा के आने के समय यहाँ उत्साह था। पर उसके चले जाने के बाद उस उत्साह के गिरने के बजाय उसका उठना देखने पर अच्छा लगता है। उत्साह ही एक ऐसी चीज है जिसके सहारे आगे बढ़ना होता है। मैं उसीकी माँग करता हूँ और संकल्प करता हूँ। मेरा संकल्प सर्वोदय का संकल्प है। सर्वोदय एक समुद्र है और दूसरे जितने भी वाद हैं—समाजवाद साम्यवाद आदि—वे नदियाँ हैं। वे सारे-के-सारे इस समुद्र में डूबनेवाले हैं। मेरा यह दावा बहुत ही ऊँचा है। इसलिए हम यही वादा करवाने का प्रयत्न करते हैं कि बाबा के जाने के बाद आप लोगों का उत्साह कम नहीं होगा बल्कि बढ़ेगा।

उत्साह के लिए शब्द-शक्ति का महत्त्व

हम मानते हैं कि शक्ति का महत्त्व होता है पर उसमें भी बड़ी होती है प्रण और संकल्प-शक्ति। इसे 'शब्द-शक्ति' कहा जा सकता है। सभी हिन्दू राम को भगवान मानते हैं। उनके साथ दशरथ संकल्प का ऐसा मानते हैं। तभी वे शब्द निभाते और वचन-बद्ध तक बढ़ते गये। किन्तु जहाँ उनका राज्याभिषेक हुआ वहाँ से उन दशरथीय जीवन समाप्त हो

गया। वे रह गये सिर्फ एक मनुष्य राम। फिर उन्होंने वे ही काम किये, जो उस समय के राजा करने के आदी थे। परशुरामजी की भी कहानी है। ईश्वरीय संकल्प वहाँ था पर वे राम को पहचान नहीं पाये। जब पहचान पाये तो शांत हो गये। अर्जुन की भी वही बात है। धनुष वही रहा, बाण वही था पर वे हिंसक लोगों द्वारा पीटे गये। उनका वह ईश्वरीय कार्य समाप्त हो गया।

मैं धर्म और राम-कथा पर बहुत कहता हूँ। यह मेरी प्रेरणा और चिंतन का विषय है। अब मैं फिर उत्थान पर आता हूँ। हिंदुस्तान में बड़े-बड़े राजा हुए। पर उनमें वह बोध नहीं रहा। उनके शब्दों का मूल्य नहीं आया। क्योंकि जो वे सोचते थे वह मन में नहीं था और जो मन में था वह ऊपर—बाहर नहीं था। गांधीजी तक यह युग था। पर गांधीजी ने शक्ति को फिर नया मोड़ दिया। उन्होंने जो सोचा वही किया और जो किया वही सोचा। उन्होंने अपने कर्म से शब्द पर विश्वास करना सिखा दिया। तभी लोगों ने उन पर विश्वास किया और आजादी पाने में सफलता मिली।

लेकिन आज यह क्रम कायम नहीं रहा। आज हम ज्यादा-से-ज्यादा जिस पर विश्वास करते हैं, जिसे मानते हैं उस पर भी लोगों का विश्वास नहीं। कारण हर नेता और व्यक्ति के मन में कुछ और है। वह बोलता कुछ और करता कुछ और है। इसलिए विश्वास अर्जित नहीं कर पाते। शब्द-शक्ति का बड़ा प्रभाव होता है। वह प्रेरणा देती है, तो ग्रहण भी करती है। उसीसे उत्साह मिलता है।

मैं शब्द-शक्ति के संचय की ओर

मेरी शब्द-शक्ति कुछ कुण्ठित हो गयी है ऐसा मुझे लगता है। मैं आपके सम्मुख अपना हृदय खोलकर रख रहा हूँ। लगातार ९ साल तक बोलता रहा हूँ। एक महीने में लगभग १ प्रवचन होते हैं, ९ साल में

लगभग १ हुए। यह बहुत हुआ। अधिक बकवास करने से शब्द शक्ति क्षीण हो जाती है। इसलिए अब मैं अपना प्रकाशन नहीं चाहता। अभी गुजरात से मुझसे एक भाई मिलने आये थे। उन्होंने शिकायत की कि आपके प्रवचन छपते नहीं, तो हम आपकी बातें नहीं सुन पाते। अखबार में पढ़ते थे तो आपकी बात सुन लेते थे। पर मैंने जान-बूझकर उसे बन्द करवा लिया है। क्योंकि मुझे लगा कि अब वाणी का संयम आवश्यक है। आप लोगों के सामने जो बोल रहा हूँ, यह व्यक्तिगत बात मानता हूँ। इसलिए मैं इसका भी प्रकाशन नहीं चाहता। मैं लिखकर कुछ कहूँ, यह दूसरी बात हुई। पर असल बात यह है कि अब मैं शब्द शक्ति संचय कर लेना चाहता हूँ।

यह आत्म-चिंतन मेरा इधर हुआ और आपके सम्मुख इसे रखने का कार्य मैंने किया है। आप जो कर रहे हैं वह मेरा अपना ही काम है। इसलिए भी यह मैंने कहा। मुख्य बात यही है कि हमारा उत्साह मन्द न पड़ना चाहिए। पड़ना कम होना और फिर बढ़ते रहना—यह तो लगा ही रहता है।

बाकेली (मेरठ)

१०-३-६

लोकनीति का विचार फैलाइये

आज प्रातः भाग में प्रदेश के बारे में चर्चा हो रही थी। उसमें मुझे बताया गया कि "यहाँ गांधी-आश्रम स्वराज्य-आश्रम ग्रामोद्योग ट्रस्ट, आदिवासी सेवा संघ हरिजन सेवा-संघ आदि नामों से खादी तथा सेवा का काम चलता है। इसके अलावा भूदान और गांधी-निधि के कार्यकर्ता भी काम कर रहे हैं। पर इन लोगों के सामने प्रश्न यही है कि सबका मिलन कैसे हो? सब संस्थाओं के कार्यकर्ता मिलकर कैसे कार्य करें? मुख्तलिफ मुख्तलिफ जमात के लोग हैं तो कोई 'कामन एजेन्ट' होना चाहिए। पर वह कैसे हो? इससे बहुत शक्ति निर्माण हो सकती है।"

मेरी दृष्टि में इसकी दो सूरतें हैं : एक तो आध्यात्मिक विचार होना चाहिए, जो सच्ची भावना उत्पन्न कर सके। दूसरे, सियासत राजनीति या लोकनीति ऐसी हो जिस पर सबकी आस्था हो।

दो आध्यात्मिक और दो राजनैतिक विचारक

गांधीजी ने देश के सामने आध्यात्मिक विचार रखे थे। वे सारे रचनात्मक कार्यकर्ता उसे मानते थे। हिन्दुस्तान में इधर दो महापुरुषों ने आध्यात्मिक विचार रखे हैं : एक तो स्वामी विवेकानन्द और दूसरे गांधीजी। स्वामी विवेकानन्द का अमेरिका में दिया गया एक ही प्रवचन उन्हें विख्यात करने के लिए काफी हुआ। सर्व धर्म-सम्मेलन में भाग लेने के लिए वे वहाँ गये हुए थे। उसीसे सारे विश्व में तहलका मच गया। उस समय हिन्दुस्तान एक पराधीन, गरीब, निर्धन देश के तौर पर पड़ा हुआ था। कोई नहीं सोच सकता था कि वह भी कुछ दे सकता है। पर उन देशों ने विवेकानन्द के उस एक ही प्रवचन

से मान लिया कि गिरी हुई हालत में भी हिन्दुस्तान कुछ दे सकता है। इससे बाहरी लोगों को ही यह नहीं हुआ कि भारत कुछ दे सकता है, बल्कि भारत में भी विश्वास जागा। गौरव हुआ कि हम भी कुछ हैं। उधर स्वामी विवेकानन्द के भारत लौटने पर जगह-जगह उनका बहुत शानदार स्वागत हुआ। जैसे कोई नेता विजय कर लौटे, वैसे वे लौटे थे। बादमें मैं ये एक नेता थे जिन्होंने भारत के लोगों पर आध्यात्मिक असर डाला। यह एक बात हुई। दूसरे महात्मा गांधी हुए, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिकता से सारे भारत पर असर डाला। सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने उनके कथनानुसार आचरण किया।

जिस तरह यहाँ दो आध्यात्मिक नेता हुए, उसी तरह राजनैतिक नेता भी दो हुए। एक तो तिलक और दूसरे गांधी। तिलक ने लोगों को एक करने का प्रयत्न किया तो गांधीजी ने सियासत का रास्ता सुझाया। उस समय राजनैतिक कार्यकर्ताओं ने उनकी बात मानकर उन्हें अपना नेता मान लिया। उधर रचनात्मक कार्यकर्ता उन्हें अपना नेता तो मानते ही थे पर राजनैतिक मामलों में भी गांधी पर श्रद्धा रखते थे। तभी देखा गया कि वे लोग जेल भी जाते थे। इस तरह, गया का काम छोड़कर उनके आंदोलन में सक्रिय भाग लेने में संकोच नहीं करते थे। मानो यह उन्हींका काम हो।

खादी का विरोध निरी बेवकूफी

किन्तु अब परिस्थिति वैसी नहीं है। आज आजादी मिली है और लोगों में निराशा की भावना फैल गयी है। नतीजा यह हुआ कि अन्य लोगों की भाँति रचनात्मक कार्यकर्ताओं के भी विचार अलग-अलग हो गये हैं। कोई इस पार्टी में गया तो कोई दूसरी पार्टी को मानने लगा। ऊपर से यह राजाजी की पार्टी आयी है। उसका एक समाचार आज के अखबार में पढ़ने को मिला। राजाजी का कहना है कि हमें संयुक्त मोर्चा

और मनन करना पसंद नहीं करते। दूसरे हैं, रचनात्मक कार्यकर्ता। वे लोग घास काटेंगे, कपड़ा बनायेंगे; पर पढ़ने-लिखने से दूर रहेंगे। वे अपनी बात किसीसे भी नहीं कह सकते और जब बात ही नहीं कह सकते, तो लोग भी उन्हें कैसे समझ सकते हैं? किन्तु दूसरों को अपनी बात समझाने के लिए यह आवश्यक है कि पहले खुद समझना सीखें। इसके लिए हमें विचार करना होगा। विचारों को बढ़ाना होगा। मैंने अपने विचारों को बढ़ाने का एक तरीका अपना रखा था। मैं गांधीजी के विचार सामने रख लेता था और अपने लिखे विचारों से मिलान कर देखता था कि कहाँ अन्तर होता है? भावों में होता है या शब्दों में? दोनों हो सकते हैं। जो कमी रहती थी उस पर ध्यान देता था कि वह क्यों हो रही है? तभी मेरा चिंतन शुरू होता था। फिर विचार आगे बढ़ता था। नया विचार मिलता था और चिंतन होता चलता था।

यहाँ अनेक प्रकार के विचार प्रचलित हैं। हम भी एक प्रकार के विचार पर खड़े हैं जो आध्यात्मिक है। पर वह है क्या? और किस दृष्टि से हम इसे देखते हैं वह इस पर निर्भर करता है। हमें यह देखना है कि यहां जितने भी विचार प्रचलित हैं उनमें सामंजस्य भी है या नहीं? अगर है तो कैसी दृष्टि से हम उन्हें देखते हैं? उन पर हमारी आस्था भी है या नहीं? सामने देखने सुनने से तो काम नहीं चलेगा। हम उस पर आस्था रखकर देखें तभी काम चलेगा और आचरण में सुभीता होगा।

आज सियासत नहीं टिकेगी

हमें समझना है आज कैसा युग चल रहा है और इसमें विचार भी कौन से टिकनेवाले हैं? विज्ञान का युग चल रहा है। अणु शक्ति और तरह तरह के विनाशकारी शस्त्रों की बात चलती है। ऐसी स्थिति में सियासत के विचार कैसे टिकेंगे? हम तरह समझ रहे हैं कि आज विज्ञान के युग में गांधीजी या विनोबा के विचार टिकनेवाले नहीं हैं वह गुण सारे का निश्चित समझना

चाहिए। सियासत के विचारों में उथल-पुथल चल रही है। आज राजाजी कह रहे हैं कि स्वतंत्रता खतरे में है। व्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करनी है तो मेरे झंडे के नीचे आइये। उनकी एक पार्टी बनी है जिसका नाम है 'स्वतंत्र पार्टी'। लेकिन इसकी जगह अगर वे ऐसा कहते कि 'स्वतंत्रता खतरे में है अगर मुक्ति चाहते हो तो सियासत से मुक्त हो जाओ" तो देश अधिक जगता। इस तरह ही लोग उनके साथ हो जायेंगे ऐसा मैं मानता हूँ।

हम राजनीति को तोड़नेवाली लोकनीति चाहते हैं और उसीके जरिये सारी सियासत को तोड़ देना चाहते हैं। पेड़ काटनेवाला पेड़ पर कैसे बैठ सकता है? वह अलग खड़ा होगा तभी पेड़ काट सकने में सफल हो सकता है। हम ऐसा ही करना चाहते हैं और अलग रहनेवाले हैं।

दूसरी बात, हम लोकनीति का विचार कर रहे हैं। लोकनीति की सफलता हमारी सफलता है और हमारी सफलता लोकनीति की सफलता है। अगर हम लोकनीति का विचार सोचेंगे, तो सारे रचनात्मक कार्यकर्ता एक हो सकते हैं। सियासत का मामला आज तक तो ठीक था पर अब विज्ञान के जमाने में ठीक नहीं है। सोचने की बात है कि राजनैतिक या अमूक कैसे लोग कामयाब साबित हो सकते हैं या नहीं? ये लोग तो हमेशा किसी न किसी गुट में शामिल होनेवाले हैं। होने का यत्न करेंगे ही। यह बात किसी भी समय, किसी भी क्षण खतरनाक साबित हो सकती है। विज्ञान-युग में इसके कारण बहुत बड़ी शक्ति मनुष्य के हाथ में आ गयी है। मनुष्य के उत्थान के लिए यह सहायक भी हो सकती है और खतरनाक भी। लेकिन प्रश्न यह है कि सियासत के काम को कौन हाथ में रखे? कौन समाज व विज्ञान की शासन पर नियंत्रण रखे? हम चाहते हैं कि स्थितप्रज्ञ लोगों को नियुक्त किया जाय। उन्हें ही शासन करने की बागडोर सौंप दी जाय। पर स्थितप्रज्ञ लोग शासन करेंगे नहीं। वे सिर्फ सलाह देने का काम कर सकते हैं। इस तरह सारी दुनिया के स्थितप्रज्ञ एक जमात बनाकर सलाह दिया करें और बाग

उसे मानें। बीच के कुछ लोग व्यवस्था की जिम्मेदारी सँभाल लें, पर वहाँ सिवकमुडो की बात मानकर ही। उस इस प्रमाद के द्वारा जो शक्ति और व्यवस्था कायम होगी वही महत्त्वपूर्ण और अधिक टिकाऊ होगी।

सत्याग्रह का आज का रूप!

किन्तु जब तक यह परिस्थिति नहीं आती तब तक हमें अपने ढंग से कार्य करना होगा। लोकमत की तैयारी करनी होगी और सत्याग्रह के बारे में भी सोचना पड़ेगा। गांधीजी के समय में सत्याग्रह और अब के सत्याग्रह में अन्तर हो गया है। गांधीजी के समय सत्याग्रह तीव्र होता चला गया था वह राह दूसरी थी। अब दूसरी है। अब वह सौम्यतर होता चला जा रहा है। १९४२ में हमने देखा सत्याग्रह तीव्र होता चला गया। इतना तीव्र कि हिंसा की सीमा पर चला गया। अगर थोड़ा और बढ़ गया होता तो उसमें और हिंसा में कोई अंतर नहीं रह जाता। तभी बापू को कह देना पड़ा कि 'अब मेरे बस में नहीं है। वह मेरे लिए आखिरी' है। अगर लोग हिंसा करते हैं, तो मैं रोक नहीं सकता। इस तरह सत्याग्रह का रूप वहाँ तक पहुँच गया जो बिल्कुल दूसरा ही था। तभी आगे चलकर वह दूसरा ही परिणाम आया। गांधीजी अपनी इस अहिंसा और उसके प्रयोगों में भ्रम में थे इसका आभास उन्हें अन्त में हो गया था। आप सब लोगों को 'लास्ट फेज़' पढ़नी चाहिए। उसमें उनके विचारों और मानसिक स्थिति तथा निष्कर्ष का सही चित्रण मिलता है। आजादी के बाद जो दंगे हुए, फूट पड़ गयी, उन स्थितियों में नोआखाली में घूमते हुए उन्होंने कह दिया : 'दरअसल अब तक मैं भ्रम में था कि मेरे प्रयोगों ने सफलता पायी है। ऐसा नहीं है। पहले मेरी आँखों में ईश्वर ने कोई पट्टी बाँध दी थी जिसके कारण अपने सभी कामों को मैं सत्य मानता चला आया। दरअसल ईश्वर को मुझसे सिर्फ एक ही काम लेना था। वह भारत की आजादी का था। वह पूरा हो गया। तभी मुझे लगता है कि इसीलिए असफल हो रहा हूँ।"

इस तरह बापू का चिंतन उन्हें यह कहने को विवश कर चुका था। इसीलिए मैं सोचता हूँ कि हमें क्या करना है। इसी कारण हमने सौम्य, सौम्यतर सत्याग्रह का रास्ता अपनाया है।

दूसरी ओर अब परिस्थितियाँ भी बदली हैं। गांधीजी के समय से आज जो अन्तर है वह हमारे सामने स्पष्ट है (१) आज लोकशाही चल रही है (२) देश आजाद है और (३) परमाणु-युग तब पूरे रूप में नहीं था पर अब वह पूर्ण रूप से है। अब किस तरह हमें सत्याग्रह करना है यह विचारणीय है। दूसरा जो हमारे सामने है उसके मन में क्या भाव आते हैं—यह भी देखने की बात है। यही मुख्य है। होना यह चाहिए कि सामनेवाले के मन में यह बैठ जाय कि टक्कर नहीं होगी तो बात बनेगी। पर क्या आज ऐसा ही होता है? कोई सामने खड़ा हो तो बात दूसरी है। पर ऐसा आज संभव कहाँ है! अणु-अस्त्र ने हमें दूसरी स्थिति में पहुँचा दिया है। अस्त्र चलानेवाला तो सैकड़ों हजारों मील दूर बैठा रहता है। उसके बटन दबानेभर की देर होती है। तब हम सामनेवाले को देखेंगे कि उसके चेहरे पर क्या भाव है। प्रहार का यह तरीका पुराने प्रचलित सभी तरीकों से भिन्न है।

पहले आमने-सामने खड़े होकर दोनों पक्ष लड़ते थे तो भाव दूसरे होते थे। इस संबंध में हजरत उमर का एक प्रसंग याद आता है। वे अपने दुश्मन से लड़ रहे थे। वे उसके ऊपर थे और जीत उन्हींकी हो रही थी। लेकिन उनके दुश्मन ने उनके मुँह पर थूक दिया तो वे उसे छोड़कर उठ खड़े हुए। फिर उन्होंने उसको नहीं मारा। पूछा गया कि आपने ऐसा क्यों किया? दुश्मन को छोड़ देने में क्या हिकमत है? तो हजरत उमर बोले : "अब मेरे लिए युद्ध संभव ही नहीं क्योंकि इसमें आत्मीय कारण आ गया। वह हार रहा था उसमें मेरे प्रति घृणा थी तभी उसने थूक दिया। इस कारण मुझे भी क्रोध आ गया। अगर ऐसी हालत में मैं लड़ता तो यह व्यक्तिगत मामला हो जाता। तब मैं अपने क्रोध के कारण

धन्य लेने के विचार से लड़ता। पर धर्म-युद्ध न होता, इसीलिए मैंने छोड़ दिया।"

समझदारी से सब कुछ संभव

इतिहास में यह मिसाल अपने ढंग की अद्वितीय है। पर आज क्या यह संभव है? हम दूर-दूर बैठे रहते हैं और बगैर किसी पूर्वसूचना या आगाह के बम गिरने लगते हैं। गिरानेवाला कौन है यह नहीं दिखाई देता। आज एक आदमी दूर बैठा बटन मात्र दबाकर काम कर सकता है। वह क्रूर, कठोर हृदय भी नहीं बन जायगा और निर्विकार भाव से बैठा काम करेगा। ऐसा हमने पढ़ा है कि पहले लोग निर्विकार भाव से धर्म-युद्ध के लिए लड़ते थे। आपस में राग-द्वेष, वैरभाव नहीं होता था। इस तरह आज तो परिस्थिति और भी भयंकर हो गयी है। यह सब कैसे होगा? तभी होगा, जब समझदारी से सारे काम किये जायेंगे।

यह एक नया अध्यात्मवाद है, जिसे मैं ढूँढ रहा हूँ। सत्याग्रह अगर फेल होता है, तो हमें उसे सौम्यतर करना होगा। सो आज से मैं इसी मकसद में हूँ। यह आध्यात्मिकता क्या होगी देखना है। फिर भी इतना जरूर है कि लोकनीति का विचार फैलना चाहिए। आपस में फूट न पड़ने देनी चाहिए। हम सभी लोगों में विचारों का फर्क हो सकता है। यह क्या है, यह बाद में देखेंगे।

[illegible] (मेरठ)
२१-४-६

हम दूसरों के गुण ही गुण देखें

बहुत खुशी होती है आप लोगों के दर्शनों से। गये साल हम कश्मीर में चार महीने घूम रहे थे और तीन-चार बार हमें अपनी फौज के सामने बोलने का अवसर मिला। ऐसा अवसर बाहरवालों को नहीं मिलता। माना जाता है कि सेना एक स्वतन्त्र विभाग है और पार्टीवालों के अपने-अपने स्वतन्त्र विचार होते हैं। सेना से उन्हें मिलने दिया जाय तो उसका गलत असर पड़ेगा। फिर भी हमें मिलने दिया गया। उन लोगों को ऐसा अनुभव हुआ कि इस आदमी का एक अलग ही मिशन है। फलस्वरूप उनके बीच कई सभाएँ हुईं। इसके अलावा अलग-अलग सिपाही भी मिलने आये। उन सबका हमारे चित्त पर अच्छा असर हुआ। पहले हम मानते थे कि ये लोग ११ इंच या अधिक चौड़ी छातीवाले होते होंगे। वहाँ अच्छे गुणों की आवश्यकता न होगी और न हम उनसे अच्छे गुणों की अपेक्षा ही कर सकते हैं। लेकिन अनुभव आया (कश्मीर में जो सेना है उससे कुल भारत की सेना का अन्दाज नहीं लगा सकते। फिर भी वहाँवाली सेना से अनुभव आया) कि हमारी सेना में बहुत ही अच्छे और सद्भावनावाले मनुष्य हैं। उन्हें दस साल से वहाँ रखा गया है और वे मोर्चे पर खड़े हैं। वे लोग अपने देश की सेवा और भावना लेकर खड़े हैं। उनमें धार्मिकता और श्रद्धा भी है।

बापू की यह सेना !

जिस प्रकार की सेना के सामने वहाँ मैं बोला था उससे भिन्न प्रकार की सेना के सामने यहाँ हम बातें कर रहे हैं। उस सेना में भी जिसका कि धर्म मौके पर तलवार चलाने का है, हमने भावनाशील लोग देखे, तो ऐसी सेना से—जिसका काम ही गरीबों दुःखियों की सेवा करने का हो और

जिनके काम का जरिया ही खादी हो, खादी के जरिये काम करने का जिनका धर्म है—तो कोई भी बहुत बड़ी अपेक्षा करेगा। आप लोग तो बापू की सेना हैं, तो सोच सकते हैं कि आपको देख हमारे दिलों को खुशी हो रही होगी।

कहा जाता है कि खादी व खादी के मिशन में काम करनेवालों की संख्या करीब २५ हजार की होगी। इसके अलावा कस्तूरबा ट्रस्ट, गांधी-निधि, ग्रामोद्योग आदि में काम करनेवाले ५ हजार होंगे। इस प्रकार कुल मिलाकर ३० हजार की हमारी सेना है। सरकार की सेना पाँच लाख की है। लेकिन हम अपने कार्यकर्ताओं को सेना के तौर पर शिक्षण दे सकें, तो उनमें से एक बड़ी शक्ति पैदा हो सकती है।

यह तनख्वाह तनभर के लिए!

बहुत सारे लोग कहते हैं कि यहाँ जो लोग आते हैं, वे नौकरी के लिए आते हैं। लेकिन मैं इस बात को गलत मानता हूँ। सबको खाने को चाहिए और सबका अपना परिवार होता है, तो परवरिश के लिए वेतन तो कुछ-न-कुछ लेना ही पड़ता है। लेकिन जो लोग यहाँ आते हैं, बहुत सद्भावना लेकर आते हैं। कैसा भी विरक्त पुरुष क्यों न हो, वह कुछ-न-कुछ अपेक्षा तो करता ही है।

अभी दो-तीन दिन पहले राधाकृष्ण बजाज आये थे, तो हमने उन्हें बताया कि मैं क्या खाता हूँ। उन्होंने हिसाब लगाया। बाजारभाव में दूध, घी आदि के जो भाव हैं, उस पर हिसाब लगाया गया, तो रोज के दो रुपया खर्च खाने का पड़ा यानी महीने के साठ रुपये। फिर कपड़ा, लत्ता, ओढ़ने का चद्दर, कम्बल, लालटेन आदि का भी खर्च होता है, उसका १५) महीना रख लीजिये। रोज मैं नये-नये मकान बदलता हूँ। लोग मुझे अच्छे मकान में ठहराते हैं। उसका किराया भी गिनना चाहिए। बाहर के हिसाब न गिनें तो भी कुछ-न-कुछ हुआ ही। फिर भी मानना चाहिए कि

कम से कम ७५) महीना मेरे ऊपर खर्च आता है। इसके अलावा कुछ सेवक भी हमारे साथ खिदमत के लिए हैं। उनमें से कुछ को स्वतंत्र मानें, तो भी एक पूरा सेवक हमारे साथ लगता होगा। हमारी यात्रा न चलती, तो वे इस प्रकार न चलते। उनके खर्चे का भार भी देश पर पड़ता ही है और लोग उठा रहे हैं।

कहने का मतलब यह कि जो अपरिग्रही है बिल्कुल स्वतंत्र कहा जाता है उस पर भी कुछ खर्च होता ही है जो देश उठा रहा है। इस तरह अगर हिसाब लगाकर देखें तो खादीवाले लोगों को जितना परिवार भी है, बहुत ज्यादा वेतन मिलता है ऐसा नहीं कहा जा सकता। पेट के लिए जितना चाहिए, उतना सेनेवाले को गुजरात में 'पेटियों' कहा जाता है। तन के लिए जितना लिया जाय वह 'तनख्वाह' है। खादी में भी तन के लिए जितना चाहिए, उतना ही गुजर-बसर के लिए देते हैं। हाँ जिन्होंने ज्यादा सेवा की है १५ साल से अधिक हो गये हैं उन्हें कुछ अधिक देते हैं। फिर भी वह सरकार में काम करनेवालों से कम है और उतना ही है जितना बापू के आश्रम में निश्चित किया गया था। बल्कि बापू के आश्रम का पैमाना त्याग का पैमाना था उससे भी वह छोटा है। इस प्रकार यहाँ एक 'त्यागी जमात' है ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिए अगर आपसे कोई कहे कि आप पेट के लिए यहाँ आये हैं तो उनसे मेरा नाम लेकर कहिये कि 'बाबा कहता है कि जैसा आप कहते हैं वैसा नहीं है। हम सेवा का ही कार्य कर रहे हैं। यही हमारी भावना है।" बाबा आपके साथ है हमेशा आपके पीछे खड़ा हुआ है।

आपका-हमारा संबंध स्थावर-जंगम साथी का

आपको गांधी का नाम प्यारा है। इसका नाम भी आपने 'गांधी आश्रम' रखा है। इसमें अगर सब लोग काम करते हैं, तो आप सब हमारे सहधर्मी हैं। आप लोग घूमते नहीं और हम घूमते हैं तो यह

मानना चाहिए कि यह आपकी ओर से ही है। मानना चाहिए कि हमने अपनी ओर से एक घुमक्कड़ आदमी छोड़ रखा है। आप जो प्रयोग कर रहे हैं वह मेरा ही है। आखिर किसी भी काम या बात की कोई प्रयोगशाला तो होनी ही चाहिए। अन्यथा किसी पर उस काम का असर पड़नेवाला नहीं। कहा जायगा कि यह तो कोई सिद्धान्त है। क्रियात्मक क्या है, यह पहले देखना पड़ता है। मेरे पास एक अमेरिकन भाई आया। उसने पूछा कि 'आप जो आन्दोलन चला रहे हैं, उसका व्यावहारिक रूप क्या मुझे देखने को मिल सकता है ?' तो मैंने कहा : 'हां' और ऐसे ही एक आश्रम का नाम-पता बता दिया। कहा कि 'यह है मेरी प्रयोगशाला। हम प्रवचन कर रहे हैं। हमारा आपका संबंध जंगम और स्थावर का संबंध है। आप मेरे जंगम साथी हैं और मैं आपका स्थावर साथी' ऐसा समझना चाहिए। आश्रम का वातावरण चारों ओर फैलाना है तो यह सब घुमक्कड़ ही करेगा।

मेरा आश्रम-जीवन ?

मैं जब आश्रम में था तो एक दोस्त ऐसे थे जो बाहर मेरा प्रचार करते घूमा करते थे। उस समय मैं रहता था। अपने काम में मगन रहने वाला [illegible] रहता था। लोग सोचते थे कैसा आदमी है। लोग अक्सर तो मुझे उन्मत्त समझते थे क्योंकि मैं किसीसे बात भी नहीं करता था। कोई आता तो पूछता 'कैसे आये ?' अक्सर उत्तर मिलता : 'दर्शन के लिए।' बस हो गया! और अपना काम फावड़ा चलाना था या जो कुछ करना होता था प्रारम्भ कर देता। अब कोई क्या करता! भाई [illegible] चले जाते। बाद में मैं सोचता कि [illegible] जो मिलने के लिए कोई आते हैं तो कुछ कहना चाहिए। पर जब लोग कहते कि हम मिलने के लिए आये हैं तो बस यह काम हो ही गया। इधर [illegible] मेरा प्रचार बाहर घर-घर वे करते [illegible] रहते।

उन्हीं दिनों बापू ने एक शख्स को भेजा जिसे वैसा ही खराब अनुभव आया, जैसा औरों को होता था। वे भारत के मशहूर क्रांतिकारी थे, जो वर्धा पहुँचे थे। बापू ने उनसे मेरी तारीफ की और कहा कि जावें जरूर विनोबा से मिल आना। तो वे क्रांतिकारी पैदल चलकर मेरे आश्रम आये। वर्धा सेवाग्राम से मेरा पवनार-आश्रम ज्यादा दूर नहीं। फिर भी वे पैदल आये, तो थकान तो आ ही जाती है। मैं फावड़ा लिये खड़ा जमीन खोद रहा था। सामने देखा एक भाई खड़ा है। पूछा : "कैसे आना हुआ?" वे क्रांतिकारी बोले "यों ही दर्शनों के लिए आया हूँ।" फिर क्या था? और कोई बात नहीं हुई। थोड़ी देर बाद ही मेरा हाथ चलने लगा। वह भाई खड़ा रहा। किन्तु कुछ नहीं बोला। लौटकर उसने बापू से शिकायत की कि कैसे आदमी के पास आपने मुझे भेज दिया जिसने मुझसे बात ही नहीं की। बापू समझ गये। बोले : 'क्या कर रहा था वह?" उस भाई ने बता दिया। बापू बोले 'इसमें नाराज होने की क्या बात है? विनोबा अपना काम कर रहा था कैसे बात कर सकता था? भले आदमी! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि जब किसीसे मिलने जाना होता है, तो पहले से समय ले लिया जाता है। जाना था तो पहले से तय कर उससे समय ले लिया होता। वह काम कर रहा था और तुमसे नहीं बात की तो कसूर उसका नहीं है।" बापू उल्टे उन पर बिगड़े। उनको आदत थी कि जो शिकायत लेकर उनके पास पहुँचता उसीको झाड़ देते। जब मैं मुझसे मिले तो उस क्रांतिकारी का हवाला देते हुए बोले : 'भले आदमी जोर आये, तो उससे मिलना और बात करना भी एक काम होता है। यह भी काम की एक श्रेणी है।" बापू की ऐसी ही आदत थी। वे प्यार और मीठी झिड़की से समझा देते थे कि क्या गलती हुई है। कहने का मतलब यह कि उन दिनों बापू मेरे प्रचारक थे। जिन लोगों से मेरा कोई भी लाभ होता वे मेरे पास भेज दिया करते। उससे मुझे बल मिलता था। काम करने की लगन बढ़ती जाती थी।

सभी तरह के सेवक जरूरी

तो जंगम सेवकों की भी जरूरत होती है। कहना ऐसा हो कि सभी प्रचारक हों और कुछ काम न हो तो क्या होगा ? तब तो इसे सभी 'यूटोपिया' कहा जायगा। व्यवहार्य जीवन या तालीम के लिए कुछ तो स्थान होना ही चाहिए। घूमनेवाले का काम एकांगी रहेगा, अगर स्थिर काम करनेवाले न हों। इसलिए कुछ जंगम हों, कुछ स्थिर हों। कोई कुछ दिन के लिए स्थिर हो और कोई कुछ दिन के लिए जंगम। और तीसरे हों स्थावर-जंगम जो घूमते भी हों और वहीं स्थिर भी रहते हों। मैं यह चाहता हूँ कि तीनों तरह के लोग हमारे पास हों। हम लोग पंग बन रहे हैं। ऐसे ही लोग हों तो बड़ा फायदा है।

यहाँ किसी भी राजनीतिक पार्टी के पास पूरा समय देनेवाले लोग नहीं। हाँ चुनाव के समय सभी कार्यकर्ता काम करनेवाले निकल आते हैं, पर हमारे पास तो पूरा समय देकर काम करनेवाली एक पूरी फौज है। अब मैं आत्म-स्तुति या आपकी बड़ाई के लिए नहीं कह रहा हूँ। मैं जानता हूँ आप कैसे कितनी लगन से काम करते हैं ! दूसरी ओर सरकार के पास ५ लाख नौकर हैं। पर वे सिर्फ आफिसों में ही काम करते हैं। उनका कार्य-क्षेत्र सीमित रहता है। उसके बाद वे स्वतन्त्र समझे जाते हैं। पर आप ऐसे नहीं रहते। आप आपस में साथी हैं। चौबीस घण्टे साथ रहते हैं और एक ध्येय के साथ काम करते हैं। यह हिंदुस्तान की अभूतपूर्व घटना है। ऐसा सिर्फ सेना में होता है। क्योंकि अपना मकसद है जनता उठाना पड़ता है तो आपस में अनुराग हो जाता है। उससे गहरा अनुराग हमारा होना चाहिए। कारण हम बापू के सैनिक हैं और प्रेम से शांति से रहने के लिए इकट्ठा हैं।

अक्षर-पुरुष की उपासना

अब हम अपने बचपन की बात सुनाते हैं। लड़कपन में मराठी और

बड़ी आसानी से किया जा सकता है। दोनों काम साथ-साथ हो जायेंगे। एक डेढ़ घंटा तो आसानी से प्रतिदिन निकाला ही जा सकता है।

दूसरों के दोष देखें या गुण ?

अब जब मैं अपने बचपन की बात सुना रहा हूँ तो और भी एकआध प्रसंग सुना देना चाहता हूँ। मैं पहले हर आदमी के दोष देखा करता था। किसमें क्या दोष है यह देखने की आदत पड़ चुकी थी। इससे क्या होता था ? मैं सोचता मैं ठीक हूँ दूसरों में दोष अधिक हैं। इस तरह मैं पास होता था और दूसरे सब फेल। अन्त में यह पाया कि सबको फेल करके मैं अकेला ही पास हो गया। पर यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं मालूम पड़ी। अब उल्टा शुरू हुआ। अब दूसरों के गुण देखना था तो अपने में दोष दिखाई देते थे। फल यह निकला कि अब मैं फेल हो गया था और बाकी सब पास। इस प्रकार मैं बापू के पास पहुँच गया, तो सब समझ चुका था। इससे एक बड़ा लाभ यह हुआ कि उन्हीं दिनों मेरा व्यवहार देखकर कुछ अच्छे मित्र हो गये थे जिनसे अब तक वही मित्रता व्यवहार कायम है। बापू से मैंने अपने मन की बातें कहीं और पूछा : "क्या करना चाहिए ?" बापू ने कहा : "अपना दोष देखना चाहिए। दूसरों का गुण देखना चाहिए।" यह बात मुझे भलीभाँति समझ में आ गयी थी। नम्रता इससे बढ़ती है। जब अपना दोष होता है तो बड़ा दीखता है और दूसरे का गुण भी बड़ा दीखता है। तो दोष दूर करना चाहिए, गुण ग्रहण करने से फायदा है।

किन्तु यह क्रम अधिक दिनों तक न चल सका। मुझमें तब्दीली हुई और मैंने तीसरा प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। वह मिश्र था। अब अपने में जो गुण था वह जाहिर करता था और दूसरों में जो गुण था उसका बखान करता था। इससे लोगों को मजा नहीं आता। खुद अपने मुँह से अपना बखान सुनकर लोग मुझे बड़बड़ ही अपने मुँह मियाँमिट्ठू

समझते रहे होंगे। पर मैंने परवाह नहीं की। कुछ लाभ यह भी चाय। मुझे यह सबसे उत्तम लगता है और मैं यही प्रयत्न करता हूँ कि गुण अवश्य ही प्रकाश में आये जायें।

गुण-दर्शन के साथ विवेक भी जरूरी

इसका मतलब यह कि हमें गुण ही गुण देखने चाहिए। यह शरीर एक मकान है। अमीर या गरीब चाहे किसीका मकान हो उसमें खिड़की होती है, दीवाल-दरवाजे होते ही हैं। ये दरवाजे खिड़कियाँ गुण के समान हैं और दीवाल दोष है। *मकान में प्रवेश करना हो तो कहाँ से प्रवेश करना* पड़ता है? दीवाल नहीं बल्कि दरवाजे से प्रवेश करना पड़ता है। मानना चाहिए कि कोई-न-कोई गुण तो प्रत्येक मनुष्य में होता ही है। चाहे कैसा ही निकृष्ट, निम्न कोटि का व्यक्ति क्यों न हो उसमें एक-न-एक गुण तो होगा ही। अगर उसमें गुण नहीं तो फिर वह जिंदा कैसे है? जिंदा रहने का समाधान वह कहाँ से पा रहा है? जिंदा क्या है? इस वास्ते उसका गुण देखना चाहिए और गुणगान करना चाहिए। उससे हम उस व्यक्ति के अधिक-से-अधिक नजदीक पहुँच सकते हैं। दूसरी ओर बड़े-से-बड़े व्यक्ति में भी एक-न-एक दोष होता ही है। अगर उसे देखा जाय, उस पर ध्यान दिया जाय तो उसका दोष बड़ा दीखेगा और गुण ग्रहण करने में हम सफल न हो पायेंगे। इस वास्ते जो दोष है उसे नहीं देखना चाहिए।

दूसरी ओर यह भी जरूरी समझता हूँ कि हम गुण-दोषों की छान-बीन, छानबीन जरूर करें। इससे अन्तर साफ होगा। पर ग्रहण करें सिर्फ गुण ही। अतः दोष समझकर त्याग करना चाहिए, इससे गुणों का विकास होगा और दोषों से बचे रहना ऐसा मेरा विश्वास है।

मेरठ
१२-३ ६

सियासत तोड़ने का आधार लोकनीति

हमने उस दिन कहा था कि हमारे लिए ग्रामसभाओं का समूह एक जमात, एक समाज, एक संघ बन सकता है, अगर हमें दुनिया में अध्यात्म लाना है। हमें लोकनीति का संकल्प साधना है तो सांस्कृतिक सत्याग्रह का भी यह आध्यात्मिक आधार है। सियासत तोड़ने का भी यही आधार है। यह जोड़ना बल है। अगर जोड़ना बल लेकर खड़े हो जायें, तो हम टिक सकते हैं।

सभी लोकनीति के पक्ष में

अब यहाँ लोकनीति का विचार आता है, उसके कई पहलू हैं। हमने इस विषय में कुछ कहा भी है। 'लोकनीति' पुस्तक में उसका सार आ गया है। सियासत टूटेगी, यह माननेवाले सिर्फ हम ही नहीं, कम्युनिस्ट भी हैं। लेकिन वे मानते हैं कि वह टूटेगी अवश्य, पर उसके पहले जोरदार शासन डिक्टेटरशिप या मजबूत केन्द्र जरूरी रहेगा। फिर वे सत्ताधारियों, जालिम लोगों के खिलाफ बेहद पुकारेंगे। वह सत्ता चाहे कैसी हो, वे लोगों की तरफ से देखा ही करेंगे। उसके बाद सरकार खतम होगी। फिर जो आयेगी, वह लोकनीति होगी। कहने का मतलब यह कि आगे लोकनीति चलनेवाली है, यह माननेवाले लोग हैं और मैं भी ऐसा मानता हूँ।

दूसरी ओर गांधीवाले हैं। वे मानते हैं कि किसी-न-किसी प्रकार की सत्ता जरूर रहेगी—चाहे वह मजबूत हो, चाहे ढीली-ढाली हो। बाकी लोग उसे पाने का प्रयत्न करेंगे। लेकिन कम्युनिस्टों के और हमारे विचार में यह अन्तर है कि 'सियासत टूटनी चाहिए' से हमारा मतलब है कि आज शासन की जितनी पकड़ है, वह आज से ही ढीली-ढाली होनी चाहिए। वे ऐसा नहीं करते और मजबूत ही बनाते हैं। फिर उसके जरिये वह खतम होगी ऐसा मानते हैं। वे जुल्मों को खतम कर सियासत खतम करने का

विचार रखते हैं। हमारा विचार इससे उल्टा है, तो हमें सोचना होगा कि इसकी क्या सूरत होगी।

हमारा तरीका

जिन क्षेत्रों में सरकार है उन क्षेत्रों से हम उसे मुक्त कर सकते हैं। यही हमारा तरीका हो सकता है। सरकार ने स्वयं जाहिर किया है कि वह धर्म क्षेत्र से हटना चाहती है। यह हमारे लिए अनुकूल ही बात है। अगर सरकार कहती कि उस क्षेत्र में भी हम आसनी ही जमायेंगे तो मुसीबत हो जाती। लेकिन उसने जाहिर कर दिया है कि हम इसमें नहीं पड़ते। उसने इसे समाज के लिए छोड़ दिया है। लेकिन वस्तुतः ऐसा नहीं है। इस क्षेत्र में भी सरकार तरह-तरह के कानून बनाती है।

हम मुल्लाओं और पण्डों की जमात नहीं मानते

धर्म और सियासत का काम अलग नहीं है। यह व्यावहारिक है। मान लीजिए मंदिर प्रवेश की बात सरकार करने जा रही है या करती है तो मैं नहीं मानता कि यह धर्म में दखल है। क्योंकि जो नागरिक अधिकार हैं सरकार उनका पालन तो करेगी ही। दूसरी बात मन्दिरों में जो पैसा है वह किसका है? अगर उसका अपव्यय होता हो और लोग कहते हों तो सरकार का दखल करना फर्ज हो जाता है। दूसरे लोग कहेंगे यह दखल हुआ। पर हम इसे नहीं मानते।

हमारा पहला क्षेत्र : भूमि

इसको हम यों कहें तो ठीक रहेगा। सरकार कुछ अंश छोड़ना चाहती है पर हम तोड़ना चाहते हैं। उसका छोड़ा हुआ हिस्से में अटका रहेगा ऐसा नहीं। हम उसे तोड़ना ही चाहते हैं। अब हम जग रहना चाहते हैं क्योंकि फिलहाल ऐसा हाल क्या है। हमें कुछ निरन्तर करना ही होगा। लोग कितनी ही शिकायत क्यों न करें, हम कहेंगे कि हम मुल्लाओं और पण्डों की जमात नहीं मानते।

यह एक क्षेत्र धर्म का हुआ। अब धर्मी के क्षेत्रों में सरकारी कानून लागू हैं। देखना होगा कि उनमें से हम कितने छुड़ा सकते हैं? जितने हम अपने और लोगों के पुरुषार्थ से छुड़ा सकेंगे उतनी ही सरकार की पकड़ कम होगी। तो हमने दो क्षेत्र लिये हैं। एक और ले सकते हैं पर नहीं लिया, अभी दो ही लिये हैं। इनमें से एक भूमि का क्षेत्र है। सरकार इस विषय में तमाम कानून बनाती है और बना सकती है क्योंकि और इसके उसका काम चलनेवाला नहीं है। भूमि का कानून लगान का कानून वसूली का कानून कितने ही भूमि सम्बन्धी कानून हैं जो सरकार ने बना रखे हैं। इसमें सरकार का कसूर नहीं। हम चाहते हैं सरकार यह क्यों करे, हम ही क्यों न करें? हम इसे सँभाल लें तो सरकार क्यों दें-या करेगी? उसका तो एक बोझ कम हो जायगा।

हम नौ साल से यही प्रयत्न कर रहे हैं। कल भी हमने इस विषय में कहा था। कांग्रेसवालों को तो नागपुर-प्रस्ताव में जो करना था वह कर लिया। पर क्या काम हुआ? सरकार यह क्षेत्र छोड़ती है और हम-आप भी यह क्षेत्र छोड़कर रहें तो फिर क्या करेंगे? मैं कहता हूँ, तब तो कुछ भी नहीं कर सकते। यह तो मानना हुआ। अगर खादीवालों ने इस काम को अपने काम से अलग माना सिर्फ खादी को ही अपना काम माना तो यह चलनेवाला नहीं है। ग्रामोद्योग के सम्बन्ध भी चलनेवाले नहीं हैं। आप लोग चाहे जितने संकल्प करें प्रतिज्ञा करते चले जायँ। यह सब तब तक नहीं हो सकता जब तक आप गाँवों में लोगों में पारिवारिक भावना नहीं भर देते। लोग परिवार की भाँति मिल-जुलकर रहने लगें तो कुछ हो सकता है। यह इस बात पर भी कुछ निर्भर करता है कि लोगों के पास दूसरा धन्धा है या नहीं? बरसात में यह कुछ सरल हो रहा है। कारण वहाँ बाढ़ आती है, लोग परेशान होते हैं और उन्हें दूसरा धंधा खोजना होता है। उसे वे ढूँढ़ते हैं तो मानधारा जल्दी होता है। सरकार इस मामले में उनकी सहायता

करती है, तो वे उभर सकते हैं। पर यह सरकार पर निर्भर रहने का तरीका है। सरकार मदद करे तभी हम एक हो सकते हैं, तभी भावना जगेगी, यह भयंकर बात मुझे समझ में नहीं आती ! ऐसा न होना चाहिए।

एक व्यय का विकल्प

कुछ लोगों ने मुझे एक रास्ता सुझाया है। वे कहते हैं, सीधे जमीन माँगना और ग्रामदान की बात करना ठीक नहीं। लोगों के मन में यह बात ठीक से एकाएक जम नहीं पाती। इसलिए हम दूसरा तरीका अपनाते हैं। हम ग्रामोद्योगी वस्तुओं के इस्तेमाल करने की प्रतिज्ञा करवाते हैं। लोग इसका पालन करेंगे, तो कुछ बात उनके मन में जमेगी। फिर उसी रास्ते से भूमि और ग्रामदान के बारे में समझाने का रास्ता साफ हो जायगा। पर हम इस बात से पूरी तरह सहमत नहीं। क्योंकि समझ में नहीं आता कि आगे कब आप यह समझा सकेंगे। शायद जब समझा पायेंगे, तब मैं और आप दोनों ही इस दुनिया से चल जायेंगे। तो इससे क्या लाभ होगा ! व्यर्थ समय क्यों गँवाते हो ? क्या भूदान, ग्रामदान न ग्रामोद्योग के संकल्प नहीं टिकेंगे ? मैं आपसे पूछता हूँ, क्या होगा इन संकल्पों का, जब गाँववाले एक होंगे। तब ये ग्रामोद्योग नहीं रहेंगे। खादी का काम भी नहीं चलेगा। यह तो सरकार की मेहरबानी है, जो यह चलने दे रही है। कल दूसरी पार्टी के लोग आयेंगे, तो क्या वे आज की मदद जारी रखेंगे ? क्या आपकी यह आशा, पर ग्रामोद्योग अपने पैरों पर खड़ा रहने लायक भी है ! इसीलिए मैं कहता हूँ, भूमि की समस्या सुलझाइए, ग्रामदान हो और गाँव अपने पैरों पर खड़े होने लगें, तभी सब समस्याएँ सुलझेंगी और तभी सियासी पार्टियाँ भी आपकी मदद के लिए तैयार हो जायँगी, क्योंकि तब वे जान लेंगी कि आप तक पहुँचने का यही एक रास्ता है।

दूसरा अंग : शान्ति रक्षा

अब दूसरा क्षेत्र लीजिए। दूसरा क्षेत्र शान्ति स्थापन का है। अगर हम

काम को प्यार करते हैं, तो इस क्षेत्र से सरकार को हटा सकते हैं। अगर हम ऐसे चाहें सबकी इच्छा-शक्ति इस ओर रहे, तो कौन चाहेगा कि यह नहीं होना चाहिए? पर इसे छोड़कर हमारे कार्यकर्ता तरह-तरह के काम में लग गये हैं। काम तो चलता ही है। लाना झगड़े-फसाद अक्सर सभी भी चलते ही हैं। पर शांति का काम कौन करेगा? हम सोचते हैं कि यह सरकार करेगी। लेकिन यह किसका काम है? समाज का है न! फिर करे तो सरकार ही करे, अन्यथा हम नहीं करेंगे—ऐसा क्यों? ऐसा हम ही क्यों न करें? मिनिस्टर भी यह कर सकते हैं। बापू ने मिनिस्टरों से भी कह दिया था कि 'अगर झगड़ा होता है तो तुम्हें जाकर वहाँ शांति स्थापित करनी चाहिए।' पर ऐसा कौन करता है? सिर्फ इस समय नेहरू ही ऐसे मिसाल देते हैं। वे दौड़ जाते हैं, जहाँ झगड़ा होता है। वे अपनी या किसीकी परवाह नहीं करते। पर उनकी इस बात का 'क्रेज' कहा जाता है। अब मिनिस्टरों और अफसरों की श्रेणी में यह काम नहीं आता। पर मैं मानता हूँ आना चाहिए। आखिर दो-चार मिनिस्टर इस काम में मर भी जायँ तो क्या हो जायगा? दूसरे आ जायेंगे! आदमियों और मिनिस्टरों की कमी नहीं है। काम रुकनेवाला नहीं, वह तो चलता ही रहेगा।

यह बेकारों का काम नहीं

मुझसे कुछ भाइयों ने कहा कि लोग हमारे बारे में दूसरी तरह से सोचते हैं। वे हमारे काम को बेकार लोगों का काम समझते हैं। पर ऐसा नहीं मानना चाहिए। यह उनका भी काम है जो किसी काम में लगे हैं। जो कोई दूसरा काम कर रहा है वह हमारे साहित्य का प्रचार कर ही सकता है। लोगों को शान्ति-सेना का विचार समझाना है यह तो आपमें से हरएक का करना ही है। आप कहीं जायँ—रेल में यात्रा करते हों, बस में घूमते या स्टेशन पर गाड़ी का इन्तजार करते हों तो आपको दो-चार किताबें पास में रखनी ही चाहिए। निरामकार गुरु पढ़ना शुरू कर दें

पास-पड़ोसवालों को सुनायें तथा लोगों को साहित्य दें। फिर बात शुरू करें। इससे लोगों तक आपकी बात पहुँचेगी और आप उन्हें अपनी बात समझा सकेंगे। सर्व-सेवा-संघ ने साहित्य प्रचार के काम को उठाया है वह आप सबके सहयोग से ही पूरा होगा।

तीसरा क्षेत्र : तालीम

तीसरा क्षेत्र जो मैं लेना चाहता हूँ पर ले नहीं रहा हूँ, वह है तालीम। मेरा मन सबसे बड़ा काम है जिसे मैंने किया है। ३ साल तक खादी का काम भी मैंने किया है पर उससे भी बड़ा यह काम किया है। हो सकता है कि लोग सोचें कि इससे क्या होगा? अगर ३ ४ सूत चलें तो कैसे सब चलते हैं, वैसे ये भी चलेंगे। फिर भी मैं सोचता हूँ यह काम जरूरी है। हम यह प्रयोग उन गाँवों में करेंगे जो ग्रामदानी होंगे।

दो ही काम हमारे प्रमुख काम हैं भूमि का काम और शांति का काम। पर हमें विचार करना है कि खादी इसमें कहाँ बैठती है? गाँव हम लेते हैं। खादी उसमें आनी चाहिए। उसके बिना वह पूरा नहीं होगा और न शांति ही पूर्ण मानी जायगी। खादी को जरूरत शांति-सेना में भी रहेगी। शांति-सेना का विचार खादी का विचार है। दोनों के बीच खादी आकर खड़ी हुई है। यहाँ वह जमीन के मसले को हल करती है तो उधर शांति के काम को करती है। यह उसका ऐसा स्थान है जैसा कि अन्य ग्रामोद्योग को नहीं है।

सर्वोदय-पात्र और मैं!

मैंने सुबह की सभा में कहा है कि तीन साल में ज्यादा-से ज्यादा क्रांतिकारी काम मेरी समझ में सर्वोदय-पात्र का है। पर अभी तक मैं देखता हूँ यह विचार न कार्यकर्ताओं को पूरी तरह समझा नहीं गया हूँ। समझ में नहीं आता कि ऐसा क्या हो रहा है। जहाँ तक मैं ख्याल कर सकता हूँ, इसका कारण यह है कि जो मेरा रिवाज था उसके अनुसार मैं नहीं चला हूँ। मेरा यह रिवाज रहा है कि जो काम मैं शुरू करता पहले खु-

करता था। फिर उसका काम देखकर या समझ में आने पर लोग उस काम को करने लगते थे। तकली चलाना, नयी तालीम, मल-सफाई, भूदान, ग्रामदान—ये सारे काम मैंने शुरू ही शुरू किये। फिर इन्हें लोगों ने अपनाया या अपनाना पसन्द किया। इसलिए अब भी मुझे शुरू करना चाहिए, दूसरों पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं—ऐसा मैं सोच रहा हूँ।

मैंने एक बार तय कर लिया कि जितने सारे पत्र लिखने हैं, वे सब लोकनागरी लिपि में लिखने चाहिए, तो लिखना प्रारम्भ हो गया और वह अभी तक चल रहा है। सोचता तो हूँ कि कोई पढ़ पायेगा या नहीं, पर लिखता हूँ, इस वास्ते लिख देता हूँ। लोग सोचते हैं बाबा के पास से आया है। इस वास्ते पढ़ना ही चाहिए, तो किसी तरह पढ़ते ही होंगे। एक बार समझ में नहीं आया, तो दुबारा पढ़ते होंगे। अगर नहीं ही पढ़ सके, तो किसीसे पढ़वाकर काम चला लेते होंगे। पर मेरा काम जारी ही है।

यह मैंने इसलिए कहा कि मैं बताना चाहता हूँ कि मैंने जो तरह-तरह के प्रयोग किये, उनके बारे में मानता था कि मैं ही पेश और मैं ही पास होने वाला हूँ। करता था और कुछ हुआ है, यह देखकर लोग मदद करने को आगे आते और मैं पास हो जाता था। पर अब परिस्थिति दूसरी है। लोगों ने विश्वास दिखाया और मैंने मान लिया। विश्वास करनेवाले दूसरे हो गये और मैं समझानेवाला रह गया। पर अब सोचता हूँ कि मुझे ही यह करना चाहिए। अगर मैं खुद समझना शुरू कर देता, परिणाम दिखाई देता, तो समझना आसान मिलती।

मैं यही विचार आपके सामने रखता हूँ। आपको करना चाहिए। और कोई बात नहीं है। मेरठ में चाहें तो शांति-सेना खड़ी हो सकती है। तब कुछ काम हुआ, शांति के रक्षक आप बनेंगे, ऐसा समझा जायगा।

मेरठ
१२. १. ६

हम घटनाओं को महसूस करें

हमारे यहाँ एक-एक घटना होती जाती है। उसका किसीको कुछ महसूस हो नहीं होता। हम ही को नहीं होता तो दूसरों को क्या कहें।

भूदान-समितियों का विघटन

हम मानते थे कि सारे भारत में भूदान-समितियाँ थीं। एक मंगल क्षण में हम जाहिर कर देते हैं कि सभी समितियाँ खतम। कार्यकर्ताओं को जो आधार था वह खतम! पर बाबा ने ऐसा कर दिया तो कार्यकर्ताओं की खुशी का पारावार न रहा। मैंने सुना लोग कह रहे हैं कि जो संस्थाएँ थीं जो बंधन थे, इस घोषणा से सब खतम हो गये। अब इतमीनान से खुलकर काम होगा। कभी आपने सोचा भी था कि कोई पार्टी इस प्रकार ढाँचा तोड़ देगी? सभी तो अपने-अपने को मजबूत बनाने का कार्य करते हैं। पर हमारे सारे कार्यकर्ता मिलकर, तैयार होकर ऐसा निश्चय लेते हैं और वह सर्वमान्य होकर कार्यक्रम में परिणत भी हो जाता है। लोग आधार से बँध रहे थे इस कारण अड़चनें आती थीं। इसलिए सोचा गया कि आधार खतम करना चाहिए। तो आधार खतम करने के लिए सारे-के-सारे संगठन को खतम करना—यह बहुत बड़ी बात है। अगर लोगों ने इसे महसूस किया होता तो वह इतिहास की बात होती। दूसरी ओर एक व्यक्ति या एक संस्था की यह बात होती तो अलग बात थी। पर एक अखिल भारतीय संस्था—अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ ने ऐसा किया, इस दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण बात हुई।

येलवाल-परिषद् की घटना

येलवाल-परिषद् हुई। देश की सारी पार्टियों के लोग और बड़े-बड़े

नेता वहाँ एक महत्वपूर्ण चर्चा करने के लिए एकत्र हुए। ऐसा कभी नहीं हुआ कि मुख्तलिफ पार्टियों के नेता एक जगह इकट्ठा बैठें पर वहाँ ग्रामदान के सिलसिले में वे आपस में मिलकर यह तय करने के लिए बैठे कि इस आंदोलन पर विचार कर निर्णय करें कि हम क्या कर सकते हैं। सबने एकमत से इसे स्वीकार किया और इसे राष्ट्रीय कार्यक्रम के रूप में मानने में हिचक नहीं दिखाई। उन्होंने कहा : "यह काम अच्छा है और होना चाहिए। आप कह सकते हैं कि लाखों-लाखों आशीर्वाद ही तो वे दे गये, और किया क्या ? तो हम कहते हैं कि वे क्या दे देते या कर यह कुछ दे देते तभी लोग काम करते ? वे नेता लोग हैं, वे आपके डिब्बे क्यों बनें ? वे तो खुद इंजन हैं, आपके इंजन वह बन सकते थे। पर उनके पीछे भी तो डिब्बे हैं उन्हें वे क्या करते ? लिहाजा उन्होंने दूसरा ही काम किया। उन्होंने आपको हरी झंडी दिखा दी। कहा कि लाइन क्लीयर है बेधड़क चलिये आपको रोकनेवाला कोई नहीं है। यह भी एक अद्भुत बात हुई।

सर्व-सेवा संघ एक दूसरी अखिल भारतीय संस्था है जिसे सरकार ने भी मान्यता दे रखी है। यद्यपि वह गैर-सरकारी है फिर भी सरकार चाहती है कि एक तो वह स्वयं अखिल भारतीय है और दूसरी वह है। यह मान्यता भी कुछ कम अद्भुत नहीं।

बिना नेता का सम्मेलन

हरएक पार्टी का अपना-अपना संगठन होता है जिसके सम्मेलन हुआ करते हैं। सम्मेलन में लोग आते हैं, तो कुछ सोचते हैं कि हम नहीं भी जायेंगे। लेकिन लोग आशा करते हैं नेता अवश्य आयेंगे। आखिर नेता क्यों न आयें ? वे तो उसीके इर्द-गिर्द हैं। पर आपने देखा मैंने सर्व-सेवा-संघ को एक पत्र लिखा और वह मंजूर हो गया। हम नहीं गये, बाकी सब गये और शानदार ढंग से सेवाग्राम का सम्मेलन हो गया। लोगों

ने तारीफ की और इस आशय के पत्र लिखे कि आपका प्रयोग सफल रहा लोग आपके यहाँ भी एकत्र होकर सोच-विचार कर सकते हैं कुछ हम कर सकते हैं। यह न कहीं देखा और न सुना ही गया। लेकिन आपके यहाँ यह भी हो गया।

नयी तालीम का प्रस्ताव और कार्यकर्ता

एक दूसरा प्रस्ताव पास होता है। यह प्रस्ताव सर्व-सेवा-संघ का है और उसका आशय है कुछ न कुछ काम में नयी तालीम का रंग बढ़ाया जायगा। पर क्या ऐसा कहीं किया गया? कितने ऐसे लोग हैं जो यहाँ बैठे हैं खादी के कार्यकर्ता हैं जो लोगों के पास यह कहने के लिए गये हों कि नयी तालीम के संबंध में यह प्रस्ताव पास किया गया है। मैं देखता हूँ, लोगों ने प्रस्ताव पर ध्यान ही नहीं दिया। अगर ध्यान दिया होता तो वे कह सकते थे कि सात घंटे जो हम काम करते हैं उससे एक घंटा बचाकर हम पढ़े और पढ़ायेंगे। अगर वे यही कहने के लिए निकल पड़ते कि सर्व सेवा-संघ ने यह तय किया है इसे हम-आप सबको करना है, तो क्या इस प्रकार एक करोड़ घरों में प्रवेश नहीं हो सकता था? इसी बहाने वे उन लोगों से और दूसरी बातें भी नहीं कर सकते थे? मैं सोचता हूँ, हमारा चित्त स्थिर नहीं। वह नये संस्कारों के लिए तैयार नहीं। लोगों के हृदयों में प्रवेश होने का क्रम चलता रहने से उत्साह मिलता है। उत्साह भी भी एक मिसाल देता हूँ। गुजरात-अहमदाबाद में एक बड़े ७ साल के कार्यकर्ता हैं। कमजोर शरीर लिये वे सीढ़ियाँ चढ़-चढ़कर ऊपर लोगों के मकानों में जाते और संपर्क-स्थापन करते थे। उन्होंने सर्वोदय-पात्र रखवा दिये। वे और कोई नहीं रविशंकर महाराज थे। अगर हमने सारे हिंदुस्तान में उनके इस काम के समाचार को ही फैलाने का काम किया होता तो भी कुछ तो काम किया गया ऐसा कहा जाता। पर हमने वह भी नहीं किया।

आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता

दूसरी ओर यहाँ कुछ बहनें बैठी हैं। ये ग्रामसेविका का काम सीख रही हैं। हमने उनसे कहा कि सारा ज्ञान और सारी पुस्तकें वृथा हैं अगर आध्यात्मिक ज्ञान नहीं। मैंने उनसे कहा कि तुम सबको रामायण पढ़नी चाहिए। तो कार्यकर्ताओं को यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि वे नित्य स्वाध्याय भी करें। उसमें आध्यात्मिक बल मिलेगी।

जेल में मैंने पढ़ाने का काम किया है। वहाँ एक कैदी को मैंने लिखना सिखाना आरंभ किया। मैंने उसे 'क-ख-कि-की' नहीं पढ़ाया बल्कि सीधे 'राम' लिखा दिया और कहा कि 'तुम्हें और कुछ नहीं करना है तुम यही लिखकर लाओ। अगले दिन वह आया तो पूरी पाटी में 'राम-राम' लिखा लाया। कौन-सा समय उसके पास था और कौन सा समय उसने निकाला, यह मैं नहीं कह सकता पर वह इस प्रकार 'राम' लिखना-लिखना सीख गया। मैंने उससे कहा : 'हमारा कोई भरोसा नहीं, कब हम यहाँ से चले जायें ! क्योंकि हम डिटेनशन में हैं। हाँ तुम्हें राम का नाम लिखा दिया अब तुम्हारी जेल कट जायगी।" उसने मेरी बात मान ली और खुश हुआ कि उसे एक सहारा मिल गया जिससे वह जेल-जीवन को भार न मानेगा। अब समय काटने में आसानी होगी।

इधर नयी तालीम का प्रस्ताव पास हुआ। प्रस्ताव के बाद हमें हमारी नयी तालीम कुछ कहना और कार्यकर्ताओं को सिखाने की आज्ञा मिली। हमने उन्हें पढ़ाना शुरू किया पर एक बात पर खास जोर दिया। वह यह कि हमारा मस्तिष्क सांस्कृतिक होना चाहिए, ताकि वह अच्छी ग्रहण-योग्य वस्तुओं को ग्रहण कर सके। हमेशा यह समझना और इस बात के लिए सतर्क रहना चाहिए कि जो बात हम करते हैं उसका क्या प्रभाव पड़नेवाला है ! काम समझ-बूझकर करना होगा। उसका एक वैज्ञानिक तरीका होना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि उसका क्या परिणाम

निकलेगा। ज्ञान के बिना काम आगे नहीं बढ़ता और काम के बिना ज्ञान अधूरा है। यही यह प्रस्ताव है। हमें चाहिए कि इसे आगे बढ़ायें।

बिना स्वाध्याय के काम का असर नहीं

अब भूदान के कार्यकर्ताओं के बारे में कुछ कहना है। मैं चाहता हूँ कि वे लोग स्वाध्याय करें। यही वह काम है जिसके द्वारा वे हमारा विचार लोगों को समझा सकते हैं। प्रश्न यह है कि भूदान में काम करनेवालों को समय कहा मिलता है? उन्हें यात्रा करनी है जमीन बाँटनी है प्रचार करना है और गाँव-गाँव मे जाना है। पर मैं पूछता हूँ, जब आप खुद ही विचार को नहीं समझेंगे तो क्या लोग आपकी बात सुनने-समझने वाले हैं? मैं कहता हूँ कि जब आप काम से जाते हैं तो दो-चार पुस्तकें थैले में डाल लें। मार्ग में कहीं आराम करें और कुछ पढ़ें। फिर चलें और अपना काम करें। इससे आपका किसी तरह का हर्ज न होगा। क्या ऐसे कार्यकर्ता मिलेंगे, जो यह करना पसन्द करेंगे? इस बात से हमारे काम का कितना असर पड़ेगा? पहले तो वह असर हमारे चित्त पर होगा। फिर होगा तो संतोष के साथ उसका भाव लोगों पर पड़ सकता है। इसके बगैर नहीं।

दर्शनीय वस्तु भावना और त्याग ही

अभी एक बहन कह रही थी कि हम मँगरौठ जाकर यह देखना चाहती हैं कि वहाँ कितनी उन्नति हुई। ठीक है जाकर देखें। पर मुझे इस सम्बन्ध में कुछ कहना है। हमारे काम को परिणाम की नजर से न देखा जाय। कितनी तपस्या हमने पायी इसका भी अधिक लगाव नहीं करना है। यह प्रयोग है जो लोगों को ग्रहण करना ही है। कितनी जमीन मिली कितनी बँटी और गाँववाले स्वावलम्बन के मामले में किस हद तक सफल हुए यह नहीं देखना है। देखना है कि भावना कितनी पनपी और त्याग कितना किया गया। भूदान ग्रामदान के जरिये एक अंकुर फूटा है और नयी परम्परा

यही है कि जमीन की मालकियत मिट रही है, इसमें शक नहीं। अब हम सर्वोदय-पात्र तथा शान्ति-सेना का विचार लेकर घर-घर में प्रवेश करना चाहते हैं। एक लोकमत तैयार करना चाहते हैं कि भूमि की समस्या मिटेगी, मिलकियत खतम होगी। शान्ति व व्यवस्था के क्षेत्र से सरकार को हटना ही होगा। ऐसी दशा में परस्पर के लिए त्याग भावना और आत्मीय भावना की उन्नति कितनी हुई, इसका अध्ययन करना चाहिए।

मूसवराक (मेरठ)
१२ १ ६

प्रान्त का मोह व्यर्थ, जिला-स्तर पर काम हो

पहले हमारे समाज में हासिल करने की दूसरी परम्परा थी। पहले बड़ों से हासिल करते थे, तब छोटों के पास जाते। कहते कि उन्होंने इतना दिया है आपको देना चाहिए। किन्तु अब उल्टा करना है। अकेले बड़ों के पास जाने से काम नहीं बनता। छोटों-छोटों से हासिल कर जब लोक मत केन्द्रीत हो तब बड़ों के पास जाना चाहिए। कारण जनता में ही शक्ति है। इस प्रकार उसके पास जाकर कुछ हासिल करके सम्भावना प्राप्त करनेवाली सरकार को हम समय सरकार कहते हैं। परन्तु अभी तो आँखें सरकार की ओर लगी रहती हैं। लोग सोचते हैं कि सरकार है तो उससे हासिल करो बेकार परेशान होने की क्या जरूरत! इस तरह लोगों की लोकशक्ति जागृत करने और उनसे मिलकर काम करवाने का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। ऐसा मानना पड़ता है।

मेरे प्रवास संचार के मान पर है कि छोटी-छोटी शक्ति जोड़ना। अगर गाँव में शक्ति है, तो उसे प्रकाश देना और कहीं न हो तो आगे बढ़ जाना। पर अब मैं अपने को यहाँ फँसा पाता हूँ। प्रान्त के लिए मेरी यह धारणा है कार्यक्रम बन चुका है। प्रान्तवाले कभी भी कुछ नहीं कर पाते कुछ नहीं करते, ऐसी मेरी धारणा है।

प्रचार का ह्रास चिन्तनीय

यहीं की मिसाल लीजिये। ६ हजार की आबादी है। सर्वोदय पात्र के आधार पर ४ कार्यकर्ता रखे जा सकते हैं। यह लोक-शक्ति का स्थान है। ऊपर डाक्टर सुशीला नायर ने कहा कि यहीं [illegible] क्षेत्र बनाकर काम लिया जाय। सारे भारत में एक या प्रान्त में एक क्षेत्र बनाया

का सकता है। अगर ऐसा नहीं किया गया, हम दूसरे ढंग से सोचते थे, तो फिर नहीं चलेगा। नयी-नयी समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं, जो कुछ देश का ध्यान खींचती हैं। इधर सर्वोदय-विचार का देश पर असर पड़ रहा है इसलिए कोशिश होनी चाहिए।

किन्तु दूसरी ओर प्रचार खतम-सा हो गया है। हिन्दुस्तान में १५ करोड़ से अधिक हिन्दी-भाषियों की आबादी है। १५ जिलों पर सर्व-सेवा-संघ ज्यादा-से-ज्यादा ५ किताबें निकलता था पर अब वह १ से अधिक नहीं निकलता। होना यह चाहिए कि कम से-कम १ हजार किताबें छपें और १५ जिलों में कम-से-कम २ सेवक होनी चाहिए। किन्तु लगता है प्रचार खतम हो गया है। कोई ऐसा निश्चित प्रोग्राम मुझे नहीं दिखाई देता, जिससे पता लगे। लोग सात-सात, आठ-आठ साल पहले जो प्रश्न मुझसे पूछते थे, अब भी वे ही पूछते हैं तो मुझे आश्चर्य होता है। आपके हापुड़ नगर की आबादी ४ हजार है पर यहाँ कितना साहित्य बिकता है? लोगों ने बताया है कि यहाँ व्यापारियों की जमात है, पढ़ने लिखनेवालों की नहीं। मैं सोचता हूँ कि भूदान का विचार दकियानूस है ऐसा माननेवाले भी चाहिए। लेकिन वे मेरे सामने आवें या लाये जावें तो मैं क्या समझता हूँ कि यह विचार कैसा है!

आप लोगों को एक-एक जिले में प्रचार का कार्य करना चाहिए। इन्दौर, उज्जैन और एक तीसरे शहर में यहाँ के तीन कार्यकर्ता डेढ़ साल से व्यापक प्रचार का कार्य कर रहे हैं। उन्होंने काम किया है और अच्छा काम हुआ है। आप लोगों को भी इसी तरह काम करना चाहिए।

क्रांति प्रवाह, लगन और पूरा समय देने से

आज मुझे यहाँ मेरठ जिले की आबादी का पता चला। २ लाख की आबादी है यह सुनकर ताज्जुब होता है। मैं तो इतनी बड़ी संख्या सुनकर घबड़ा गया। क्या होगा ऐसे में? यहाँ से एक मनुष्य इकतालीस गया है।

यह आयेगा छोड़कर तो अकेला क्या कर लेगा ? जिस देश में बहुत-सी पार्टियाँ हैं वहाँ एक-दो व्यक्ति क्या कर सकते हैं ? मुझे पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता चाहिए। फुरसत से क्रान्तियाँ नहीं होतीं। क्रान्तियाँ होती हैं लगन से, ध्यान से और पूरा समय देने से। आपके जिले के लिए कम-से-कम चालीस कार्यकर्ता चाहिए। मै ४ कार्यकर्ता बहुत कठिन बात नहीं। अगर चाहें तो इतने कार्यकर्ता आसानी से खड़े कर सकते हैं।

दूसरी ओर हमारे पास मरनेवालों के पत्र आते हैं। सीताराम ओम-वाले मरे, इसका पत्र आया है। यहाँ (उत्तरप्रदेश में) बाबा राघवदासजी नहीं रहे, बिहार में लक्ष्मीबाबू नहीं रहे, उड़ीसा में गोपबाबू नहीं रहे, इसी तरह बापूजी नहीं रहे उधर कुमारप्पाजी भी चले गये। इन रिक्त स्थानों को कौन-कौन ले रहा है इसका समाचार ही नहीं मिलता।

बड़े पेड़ के नीचे छोटे पेड़ नहीं बढ़ते। पर छोटा बच्चा बड़ी माँ की छाया में बढ़ता है। आपके यहाँ जो काम कर रहे हैं उनके बारे में स्थिति यह है कि बड़े-से-बड़े लोग उस काम के बारे में नहीं जानते। इस लिए हमारा यह कहना है कि हमारी यह भावना छोटों को दबाने की नहीं। जहाँ जितना काम हो वहीं किया जाय। पहले मैं सभी जिलों में काम करना पसन्द करता था। पर अब अगर प्रांत के छ-सात जिलों में ही काम होता है तो वहीं किया जाय। प्रान्त का कोई काम नहीं। प्रान्त का मोह छोड़ना ही पड़ेगा।

हापुड़ (मेरठ)
१०-५-६

शान्ति-सेना और सर्वोदय-पात्र

अंग्रेजों की सभ्यता में कुछ गुण थे। जब उनका राज्य यहाँ हुआ, तो हमारे यहाँ के बहुत-से अच्छे-अच्छे लोग समझ गये कि अब हमें अपना आत्मशोधन करना है। हम अंग्रेज सरकार की सेवा में रहकर समाज-सेवा का कार्य कर सकते हैं। फलस्वरूप बहुत बड़े विद्वान् और नेता लोग सरकार में गये। इस श्रेणी में दादाभाई नौरोजी से लगाकर रानडे तक के नाम आते हैं। वे मानते थे और सचाई से मानते थे कि भारत में नया विचार आया है जिससे कुछ सीखने का है। हम उनके नौकर रहकर अपने लोगों का बहुत कुछ सुधार कर सकते हैं। यहाँ तक कि असहयोग-आन्दोलन के पहले तक गांधीजी भी राजनिष्ठ थे। यद्यपि वह एकपक्षीय सरकार थी फिर भी हमारे नेताओं ने देशसेवा के सम्बन्ध से ही उनकी नौकरी की। यहाँ तक कि शंकर महाराज का जहाँ तक ताल्लुक है रानडे का नाम प्रमुख आता है। वे एक सत्य विचारक थे किन्तु वे भी एक सरकारी नौकर ही थे। जब असहयोग का प्रस्ताव आया तो लोगों ने सरकारी नौकरियाँ छोड़ीं। फिर भी कुछ लोग रह गये। हालाँकि उनकी नौकरी बनी रही पर इज्जत तो गिर ही गयी। उस समय सरकार की ऐसी हालत थी कि काम करनेवाले अधिक नहीं थे। अगर सबके सब काम छोड़ देते, तो आजादी उसी समय मिल जाती। किन्तु यह नहीं हुआ। उस समय एक चमत्कार हुआ कि जो नौकरी में रहे वे देशद्रोही की श्रेणी में आ गये।

इसी तरह आजादी के बाद दूसरा चमत्कार हुआ। जितने सरकारी नौकर थे वे सभी देशसेवकों की सूची में आ गये। जिन्होंने सन् '४२ में लोगों को और क्रान्ति को दबाया था वे भी सबके सब देश सेवक बन गये।

मेरी समझ से सरकार में जितने प्रामाणिक नौकर हैं सब दावा कर सकते हैं कि हम देश की सेवा करते हैं। हमें मान लेना चाहिए कि अच्छे लोग देश-सेवा के लिए सरकार की सेवा में जाते हैं। तो उन्हें नौकरियों में जाना चाहिए। कश्मीर में मुझे अनुभव आया कि सेना में भी लोग अच्छी भावना से गये हुए हैं। अगर अच्छे लोग सरकार में जाते हैं तो अच्छा ही है। अगर वे न जायेंगे तो राज्य ही कैसे चलेगा? किन्तु दूसरी ओर कहा जाता है कि जो लोग सरकार के बाहर रहकर अपना काम करते या अपनी सेना रखना चाहते हैं उन्हें दो भागों में बाँट सकते हैं। वे या तो क्रांतिकारी हैं या फिर मूर्ख।

शान्ति-सेना का विचार हमारे सामने है। हमें सोचना होगा कि वह खड़ी करनी है या नहीं? हमें यह सेना स्वतन्त्र रखनी है। जैसे फौज के लोग होते हैं वैसी ही इनसे आशा की जाती है। फिर जितने सरकारी नौकर हैं उन सबकी सहानुभूति भी हमें हासिल करनी है। लेकिन देखना यह होगा कि हमारी सेना सरकार पर निर्भर न रहे। उससे हमें नुकसान होगा। सर्वोदय-पात्र के जरिये हमें अपने पैरों पर ही खड़ा होना चाहिए।

सरकार की मुखापेक्षिता का परिणाम

हमने सरकार के सहयोग से एक प्रयास किया पर उसका अनुभव अच्छा नहीं आया। कोरापुट में ग्रामदान हुए और सभी राजनैतिक पार्टियों का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। तब हमने सोचा कि कुछ करना चाहिए। अण्णासाहब सहस्रबुद्धे वहाँ जा बैठे। वे वहाँ हर बात में सरकारी मदद की आशा करते थे। कारण येलवाल में जो लोग जमा हुए थे उनमें से सरकारी लोगों ने मदद का आश्वासन दिया था। लेकिन उड़ीसा की सरकार ने कोई सहयोग नहीं दिया। उसकी ओर से मदद का अभाव ही नहीं रहा बल्कि सर्व-सेवा-संघ के काम में रोड़े भी अटकाये गये। तब अण्णासाहब को जाहिर करना पड़ा कि चूँकि सरकार हमारे काम में मदद नहीं करती

रोके ही अन्यथी है, तो सर्व-सेवा-संघ इस क्षेत्र में डट रहा है? परिणाम-स्वरूप विरोधियों के कान खड़े हुए। उन्होंने इसे अपनी बदनामी समझी और राज्य-सरकार से कहा। तब थोड़ी मदद मिली। नवबाबू उड़ीसा के मुख्यमंत्री थे। उन्होंने मदद की। उनका यह काम बुद्धिमानी का काम था या मूर्खता का यह आपको ही तय करना है। इसलिए मेरा तो यह निश्चित मत है कि ऐसे विश्वास के साथ हमारा आंदोलन खड़ा होना चाहिए कि सरकार तटस्थ रहे, विरोध में रहे या अनुकूल हो तो भी आप का आंदोलन चलेगा ही। इसके लिए सर्वोदय-पात्र ही एकमात्र आधार है। आज सरकार रचनात्मक काम करती है किसान भी रचनात्मक काम करता है तो हम भी बीच में खड़े हैं। लेकिन क्या करना है हमें? क्या हम ही सारे रचनात्मक काम करें? मैं समझता हूँ कि यह काम करने का नहीं बल्कि कराने का है। फिर वह अपने प्रभाव से हो या बीच में पड़कर हो। लेकिन इसके यह मानी नहीं कि हम खुद ही न करें, खादी ही न पहनें। अगर हम यही करते रहे, तो होगा यह कि हम अनन्त काम में फँस जायेंगे और कोने में पड़ जायेंगे दाँव छिपे जायेंगे। फिर यह क्रांति का काम होगा यह भी मैं नहीं मानता।

गुलबदी (मुजफ्फरपुर)
१८-९-६

'जय जगत्' तक कैसे पहुँचें ?

आज हमसे एक प्रश्न पूछा गया था। हमारे सम्पर्क के हमारे लोकबंधु ने यह पूछा था कि 'यह ठीक है कि हम 'जय जगत्' बोलते हैं और चाहते हैं कि समस्त विश्व एक राज्य हो जाय। किसी प्रकार का भेद भाव, ऊँच-नीच पन या अपना-परायापन न रहे। मानव मानव के रूप में रहे। लेकिन क्या यह स्वाभाविक है ? मनुष्य अकेला नहीं रहता। वह अपने आस-पास समूह बना लेता है। एक विचार से जिनका मेल खाता है उनका एक समूह बन जाता है। उससे भिन्न विचारवालों का एक अलग समूह बनता है। आज विचार के आधार पर समूह बनते हैं। हमने जिस विचार को अपनाया है उससे भिन्न विचार अपनानेवाले हमसे विरोध रख सकते हैं। जब समान विचार रखनेवाले अलग-अलग रहते हैं, तो अलग-अलग विचारवाले एकरूप कैसे रह सकते हैं ? आपस में भेद मिटेगा नहीं यह वास्तविकता है। दूसरी ओर अभेद की बात है तो वह आदर्शवाद है। वस्तुस्थिति यह है कि भेद है और आदर्श है कि भेद न हो। फिर यह कैसे सधे ?' यह पुराने समय से प्रश्न रहा है। लोगों ने उत्तर दिये हैं, फिर भी प्रश्न कायम है।

क्या भेद वस्तुस्थित है ?

क्या भेद वस्तुस्थिति है। यहाँ वस्तु का स्वरूप क्या है इस पर विचार करना होगा। एक पेड़ में अनेक प्रकार के भेद होते हैं। फल दीखते हैं फूल दीखते हैं पत्तियाँ दीखती हैं डालें दीखती हैं तने दीखते हैं। गुठली बोयी गयी, पर उसमें जो पैदा हुआ वह आम पैदा हुआ। लेकिन गुठली में वह स्वाद नहीं आ सकता। लकड़ी जलाने के काम आयी। पत्ती, फूल फल में अलग-अलग स्वाद हैं, पर वह है आम वृक्ष। तो यह भेद क्या है ? एक पद

कहता है कि दोनों अभेद हैं दोनों वस्तुस्थित हैं। विरोध मानने की जरूरत नहीं। दूसरा कहता है गुस्सी थोपी थी गुस्सी जायेगी। अब हम वस्तुस्थिति के दो पक्ष देखें। वस्तुस्थिति में भेद है और अभेद भी वस्तु में भेद है पर चाहते अभेद हैं। चाहते हैं तो आयेगा ही। तीसरा पक्ष है कि वस्तुस्थिति में भेद है। मेरा खयाल है कि यह दृष्टिमात्र का भेद है।

सर्वोदय का आधार

ये तीन पक्ष हैं। सर्वोदय का आधार है कि तीनों पक्षों को लेकर हम समान बनायेंगे। भिन्न विचारों का एकत्र होना स्वाभाविक है। समान नीति और विचारवालों का एकत्र होना स्वाभाविक है ही। लेकिन सिर्फ समान विचारवाले मिलते रहें, तो अरुचि होगी। इसलिए भिन्न विचार वाले भी चाहिए। एक प्रकार के लोगों के एकत्र होने से कार्यक्रम बनेगा तो दूसरे प्रकार के लोगों के एकत्र होने से विचारों में संशोधन होगा। संशोधन होगा तभी मिलजुलकर कार्यक्रम बनेगा। सबकी भिन्न-भिन्न रायें मिलाकर जब कोई कार्यक्रम बनेगा तभी उसका परिणाम निकलेगा। इसमें कार्यक्रम देर से बनेगा तो भी हर्ज नहीं। इसलिए समान विचार वालों का एकत्र होना जरूरी है और भिन्न विचारवालों का एकत्र होना भी जरूरी है। फिर एक विचारवालों की एक विचारवालों के साथ संगति होनी ही चाहिए। इससे जो नये विचार उत्पन्न होंगे, उन्हीं से एक निश्चय (कन सन्स) बनेगा।

हम एकांगी न बनें

हम सिर्फ सर्वोदय विचार का अध्ययन करें तो इसमें खतरा दिखाई देता है। एक ही विचार का अध्ययन करनेवाले एकांगी होंगे, अपने ही विचारों का मन्थन करेंगे और वे ही विचार ठीक माने जायें इसके लिए जिद करेंगे जैसा कि कम्युनिस्टों का रवैया है। वे एकांगी हो जाते हैं। यही खतरा आज समाजियों की है। उनके मन में यह भय है कि अमेन

किताबें पढ़ी जायें और कौन नहीं ? उन्होंने तुलसीदास की रामायण को न पढ़नेवाली किताबों में डाल दिया। इस किताब का प्रभाव सारे समाज पर पड़ता है ऐसा इनके एक बड़े नेता मानते हैं पर वे लोग नहीं मानते।

इन दिनों मैं मजहबों के पीछे लाठी लेकर पड़ा हूँ। परसों एक भाई ने समझाया कि लाठी लेकर पीछे मत पड़ो। मुझे एक प्रसंग याद आता है—मैं एक मौलवी साहब से कुरान पढ़ता था। वे कुरान को ही सब कुछ मानते थे। कहते थे कि यह पढ़ लिया तो सब कुछ पढ़ लिया। इसके अलावा और किसी किताब की कोई आवश्यकता नहीं। तर्क देते थे कि इसके आरम्भ में और अंत में 'स' आ जाता है। मतलब हुआ बस! इसे क्या कहा जाय ? यही कारण है कि मैं कहता हूँ कि मजहबों और पंथों को जाना है और रूहानियत को आना है।

समान कार्यक्रम के काम

अब यह कैसे आये ? तो मैं कहता हूँ कि इसके लिए सर्वोदय मण्डल बनाये जायें। समाज के हर मसले का अध्ययन करने के लिए इन्हें बनाया जाय। यह नहीं कि लोगों से मिला ही न जाय। मिलने और चर्चा करने से मंथन होगा तो मक्खन निकलेगा। यही बात कम्युनिस्ट भी कहते हैं पर वे दूसरा शब्द इस्तेमाल करते हैं। वे कहते हैं 'घर्षण'। मैं कहता हूँ कि घर्षण से तो अग्नि पैदा होती है। इसलिए यह शब्द ठीक नहीं। बल्कि मन्थन होना चाहिए। उससे मक्खन निकलेगा विचार विमर्श होगा। इसलिए विरोध कार्यकर्ताओं से हम समान अंश पर आकर कामन प्रोग्राम बनायें। इसमें समय कि काफी देर से काम हो रहा है। पर मानना चाहिए कि जल्दी हो गया। कारण सब साथ काम करेंगे। जो अंश बच जाय उस पर चर्चाएँ होती रहें। फिर काम भी बाद में हो जायगा। इस तरह सर्वोदय मण्डल विचार करें, काम करें, तो अधिक काम होगा।

हम काम और प्रेम दोनों के लिए एकत्र हों। होता यह है कि आज

या तो लोग प्रेम के लिए एकत्र होते हैं या फिर काम के लिए। हमें दोनों ही करना है। यहीं देखिये, कैसे लोग बैठे हैं ? एक खादी के काम में लगा है और दूसरा भूदान के कार्य में। एक कहता है : 'हम यह करेंगे' तो दूसरा कहेगा : 'यह होना चाहिए'। तो सिर्फ काम के आधार पर कैसे एकीकरण होगा। इसलिए प्रेम की भूमिका पर भी ध्यान दें। लेकिन खाली प्रेम की भूमिका पर भी तो काम नहीं होगा। बैठकर तय करना होगा कि क्या करें ? ज्यादा काम पर बात आती है और प्रेम से तय कर लेते हैं कि क्या काम करें। इस प्रकार जो मिलकर तय होगा वह कामन प्रोग्राम होगा। इस तरह आत्मा और प्रेम के आधार पर जो समाज रचना होगी वह आपको 'जय जगत्' तक पहुँचा देगी।

यह विलंब हानिकारक नहीं

इसलिए अगर देर से कोई प्रोग्राम भी बनता है तो इसमें कोई दोष नहीं। कहावत है : 'स्लो एण्ड स्टेडी विन्स दी रेस।" जो प्रोग्राम बने उसमें खिलाफत नहीं होनी चाहिए। अन्यथा खिलाफत करने और उसे दूर करने में ही समय बीतता है। कोई भी प्रोग्राम ऐसा तय करके बनाना चाहिए जो सबको कबूल हो चाहे देर से बने। जब वह बनेगा तो सब मिलकर काम करेंगे और शीघ्र ही वह काम पूरा हो जायेगा।

जहाँ तक चुनाव की बात है दो भाई खड़े हों तो विरोध में वे एक-दूसरे के खिलाफ बोलेंगे। पहला हार जाय तो बाहर रहकर जनता की सेवा करे और दूसरा जीत जाय तो पार्लमेंट में जाकर सत्ता के द्वारा जन-सेवा करे। वे विचारों में भले ही अलग हों एक-दूसरे के वोट लेने को तैयार न हों पर खान-पान में एक ही ओर रहें एक पथ। यही है चुनाव-दर्शन जो इस दिशा में बनाना चाहिए।

मुजफ्फरपुर
१०-२-६

पक्षमुक्त समाज बनाओ

इन दिनों कुछ नये विचार मैं सामने रख रहा हूँ। जब से कश्मीर में पहुँचा हूँ, तब से एकमात्र साम्य से संदेश के रूप में मैंने यह चीज रखी है। यह संदेश पंडितजी को भी सुनाया गया। सुनकर पंडितजी ने उसी पर व्याख्यान दिया। 'विज्ञान पर ध्यान दिया जाय और मजहब जायेंगे' इसका जिक्र पंडितजी ने और भी एक बार विज्ञान का महत्त्व समझाते हुए किया था। किन्तु अभी कल हमने पढ़ा कि पटना में विद्यार्थियों की एक सभा में इस विचार को उन्होंने स्पष्ट रूप से रखा और मेरे नाम का उल्लेख भी किया। उन्होंने कहा 'यद्यपि मैं राजनीतिज्ञ हूँ, पर विनोबा भावे के इस विचार से सहमत हूँ। विज्ञान को मैं पसन्द करता हूँ, और मजहबों को जाना ही चाहिए। उन्होंने यह बात कहकर मेरे सियासतवाले सिद्धान्त को भी ग्रहण किया है।

सियासत का खातमा सियासत के लिए भी अच्छा

प्रश्न है कि कुल दुनिया का भला किस प्रकार हो? इसे सोचने के लिए सियासी नेता बैठते हैं किन्तु उनका स्तर दूसरे प्रकार का होता है। यह विचार कुल दुनिया का होता है जो उनके अधिकार-सीमा में नहीं आता। वे सिर्फ राजनैतिक विचार और चर्चा करते हैं। हैं तो वे लोग पुराने युग के और इधर नया युग उनसे ये पाँव बुलवा रहा है तो बात बने कैसे? इसी का यह है कि वे नेता के काबिल नहीं किसी भाँति परिस्थितियों के अनुसार नेता बने बैठे हैं। लेकिन वे इतना समझ जायें और अगर यह है कि हमें छोटी छोटी सियासतें तोड़नी हैं तो यह सिर्फ मानवता के ही भले की बात न होगी बल्कि सियासी को ही लाभ पहुँचानेवाली होगी।

मुझे यह बात बहुत स्पष्ट समझानी पड़ी है। लोग कहते हैं गांधीजी

ने भी तो सियासत चलायी थी। पर गांधीजी से जब पूछा जाता था कि स्वराज्य होने पर आप कौन-सा विभाग (पोर्टफोलियो) लेंगे ? तो गांधीजी कहते थे 'स्वराज्य में मेरा क्या काम है ? अभी तो मैं परिस्थितियों से लाचार हूँ तभी इसमें पड़ा हूँ। आजादी के बाद मेरा विषय वेद-संशोधन और गणित का रहेगा। ऐसा समय इधर आजादी मिली देश खुशियाँ मना रहा था उधर वे नोआखाली में घूम रहे थे। वे लोगों की सेवा और तकलीफों के लिए वहाँ घूम रहे थे। ऐसी आजादी से वे संतुष्ट नहीं थे।

इनसे कमी काम नहीं

और स्वराज्य हुआ। इसमें क्या होना चाहिए ? जनता की ताकत होनी चाहिए। अपनी सरकार है, पर ग्राम-ग्राम स्वतंत्र समाज, छोटे-छोटे समाज रहें, जो सत्ता की अभिलाषा छोड़कर लोगों की सेवा करें। सद्भावना मैत्री और भाईचारे का प्रचार होता रहे। यही है स्वराज्य और स्वराज्य की भावना। ऐसा जब तक नहीं होगा तब तक सत्तारूढ़ दल का सुधार नहीं होगा। *आज आवश्यकता यह यही है और यही नहीं हो रहा है।* तभी स्वतंत्र पार्टी का प्रादुर्भाव हुआ। जयप्रकाशजी जैसे लोग उसे आशीर्वाद भी दे रहे हैं।

कहा जाता है कि पश्चिम की लोकशाही यहाँ आयी और लोगों ने इसे अपनाया है तो यह मानना ही होगा कि विरोधी पक्ष से सत्तारूढ़ पार्टी का संशोधन होता है। लेकिन यह कतई गलत है। इससे सत्ताधारियों का नैतिक पतन होता है पर सत्ताभिलाषियों का भी होता है। वे छोटी-छोटी गलतियों को बढ़ाकर देखते हैं जो नहीं है उसे देखते हैं और सच्ची के रूप में रखते हैं। वे सरकार की गलतियों से लाभ उठाते हैं, तो आवरण ओढ़ी है। इसलिए वे तटस्थ नहीं 'राइट परसन' नहीं।

मार्गदर्शन कौन करेगा ?

तो प्रश्न है तटस्थता का मार्गदर्शन का। मार्गदर्शन कौन करेगा ?

हम लोकशाही में नियम मानकर चलते हैं कि सब कुछ अच्छा रहे और सुधार हो जाय। जिनका लोगों पर असर होता है, वे सरकार में आते हैं। जिस दल के लोगों की संख्या अधिक हो उसीकी सरकार बनती है। दो दो चुनाव हो चुके। तीसरा होने जा रहा है। कहा जाता है कि इसमें अव्वल कांग्रेस। पर क्या यह संभव है? आपको अधिक तादाद में वोट मिलेंगे तो वही करेंगे जो वर्तमान है। हाँ अगर बराबर के नजदीक मिले, तो फिर सरकार अस्थिर रहेगी निश्चय लेने में घबड़ायेगी। और अगर कम मिले तो असर क्या होगा? दूसरे की सरकार बनेगी और शासन-भार वही काम करेंगे, जो आज दूसरे कर रहे हैं। इससे लाभ ही क्या?

इसलिए मैं चाहता हूँ कि एक तीसरी जमात बने। यह नीतिमान् बुद्धिमान् लोगों की होनी चाहिए। देश में जो नीतिमान् बुद्धिमान् पुरुष हैं वे अधिक-से-अधिक तादाद में इसमें आवें। इसे बनना है तो समाजधारी बनना चाहिए। प्रेसिडेण्ट, असेम्बली के स्पीकर, फौज के लोग, जज सब पक्षमुक्त होने चाहिए। इनसे राष्ट्र ऐसी ही उम्मीद करता है। दूसरी ओर यह भी चाहा जाता है कि शिक्षा पक्षमुक्त हो सरकारी नौकर और उनके काम पक्षमुक्त हों। समितियों और ग्राम-पंचायतों के चुनाव पक्षमुक्त हों। मतलब यह कि जो-जो अच्छे काम हैं, जिन्होंने राष्ट्र-निर्माण की जिम्मेदारी ली है, वे सब पक्षमुक्त होने चाहिए। पक्ष में रहनेवाले पक्षाभिमानी भी ऐसा ही मानते हैं! पर जब वे मानते हैं तो करते क्यों नहीं? इसीलिए कि पक्षाभिमानी हैं। समझ में नहीं आता कि वे पक्षाभिमानी भी क्यों हैं उनकी क्या जरूरत है? इसलिए पक्षमुक्त काम होने चाहिए, यह विचार फैला है और इसके लिए तीसरी जमात का विचार सामने है।

क्या आपका भी कुछ पक्ष नहीं?

लोग कहते हैं कि आप ही तीसरी जमात बनाओ। अखाड़े में आया जाय। पर यह ठीक नहीं। हमने एक काम किया तो आप दूसरा करें। असेम्बली

है कानून की किताबें इकट्ठा कर रखी गयी हैं। प्रतिदिन घटनाएँ घट रही हैं तो उनका अध्ययन करें और उचित समझें तो करें। कुछ तो जिम्मेदारी आपकी भी है। गाय दूध देती है, पर वह मक्खन नहीं बनाती उसे दूसरे लोग तैयार करते हैं। भूदान की बात हमने चलायी। संपत्तिदान, श्रमदान, बुद्धिदान पक्ष और ग्रामदान भी हुए। बेलवाल में सभी पार्टीवाले ग्रामदान के संबंध में विचार करने के लिए इकट्ठे हुए। उन्होंने हमें आशीर्वाद दे दिया कि काम अच्छा है। आप करें हम सहयोग देंगे। लेकिन आशीर्वाद तो दे दिया पर करेगा कौन? आपने आशीर्वाद दिया तो करना भी चाहिए। अगर आप मानते हैं कि यह नया विचार है, तो इसे विधान में किस तरह लाया जाय कैसे अमल में लाया जाय यह भी आपको सोचना होगा। अन्यथा बेकार है आशीर्वाद देना और अलग सोचना।

कार्यकर्ता सोचें-समझें और जुट जायँ

यह विचार मैं आपके सम्मुख इसलिए रख रहा हूँ कि आप सोचें और जब काम करने लगें तो आपका मस्तिष्क इन सब बातों से भरा हो। यह नहीं कि आप सिर्फ खादी बेचें अपना काम करें और अपने दिमाग को यहीं तक सीमित रखें। 'आगे सोच-विचार की बात दूसरे करेंगे' ऐसा सोचना गलत है। आप देख रहे हैं पंडितजी जैसे राजनीतिज्ञ पुरुष को भी इसे स्वीकार करना पड़ा। उनकी सारी उम्र सियासत में कटी है, पर वे भी ऐसा सोचते हैं। कारण, वे उन लोगों जैसे नहीं, जिनकी दृष्टि संकीर्ण होती है, वरन वे दूरदर्शी हैं। वे देख रहे हैं कि यह होने ही वाला है—चाहे इस समय न हो सके, पर होगा जरूर।

कुछ मिलाकर विचार जीवनव्यापी विचार हो जाता है। पंडितजी इसके पूरे महत्त्व को मानने लगे हैं। ग्रामदान के विचार में किसीको शंका नहीं यह प्रिय हो गया है। मिल्कियत मिटनी चाहिए यह विचार

भी प्रिय हो गया है। दूसरी ओर शांति-सैनिकों का विचार है। इसके द्वारा हम जगह-जगह शांति-सैनिक खड़े कर अन्दरूनी व्यवस्था के मामले में सरकार को मुक्ति देना चाहते हैं। घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखे जायँ और शांति-सैनिक पक्षमुक्त रहकर काम करें ऐसे विचारों में सबकी रजामन्दी है। सब कहते हैं यह आपके द्वारा पूरा होना ही चाहिए। इसलिए आप समझें यह करना है इस काम में जुट जाना है।

'मोहब्बत का पैगाम' एक अच्छी किताब

अब थोड़ा-सा नये साहित्य के बारे में। हमारी अद्यतन किताब आयी है, वह आपको पढ़नी चाहिए। विचार की दृष्टि से विचारकों के बुनियादी और आखिरी विचार पढ़ने चाहिए। बीच की बात तो बदलती रहती है। इसमें वे भाषण हैं जो हमने कश्मीर में दिये थे। इसका नाम है, 'मोहब्बत का पैगाम'। यह इतनी अच्छी बन पड़ी है इसका स्वयं मुझे आश्चर्य होता है। वरना मैं समझता था कि भाषण देना है कुछ कहना है बस। पर उसमें मैंने बहुत सी बातें खरी-खरी कही हैं और बिल्कुल स्पष्ट कही हैं। मैंने सियासत और मजहब के विचारों के संबंध में कश्मीर के मुसलमानों से कहा कि आप मेरे विचारों का प्रचार कीजिये। वे बोले : 'आप कहते तो ठीक हैं पर हम नहीं कर सकते। उन्होंने स्पष्टतः इस बात को स्वीकार कर लिया कि मुसलमानों में और उसके बाहर भी किसीने ऐसा नहीं कहा। इस प्रकार मेरी यह पुस्तक अच्छी बन पड़ी है। मैं चाहता हूँ कि यह पढ़ी जाय और अधिक-से-अधिक इसका प्रचार किया जाय।

रीठा (मेरठ)
२१-८ १

सत्साहित्य का अध्ययन आवश्यक

अपने देश में संस्कृत भाषा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। एक जमाने में वही मुख्य भाषा थी। फिर प्रांतीय भाषाएँ हुईं। राजनैतिक वर्णन करने का काम इसके द्वारा चलता था। थोड़े ही दिन हुए होंगे, राज्य का काम इस मुख्य भाषा में चलता होगा। फिर हिन्दी के साथ उर्दू, फारसी तथा अंग्रेजी में आया। हमारी भाषाओं को काफी मौका मिला। इनमें संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं में धार्मिक-आध्यात्मिक साहित्य को छोड़कर अन्य व्यावहारिक साहित्य अधिक नहीं है। एक सौ साल से इधर कुछ लिखा जा रहा है, पर जब यूरोप में इन वर्षों में लिखे साहित्य के मुकाबले बहुत कम है। संस्कृत में भौतिक धर्म अनेक विषयों में है लेकिन वह साहित्य अब पुराना हो गया है जो काम का नहीं। परिभाषा के विषय में हम ब्योरे में न जायें तो भी लगता है कि भले ही वह पुरानी काम में आये, पर हमें उसे नयी बनानी पड़ती है।

दूसरी ओर मानना होगा विज्ञान जिस तरह आज है, पुराने जमाने में उस तरह नहीं था। मतलब यह कि ढंग बदला और प्रचार हुआ है। इसका यह मतलब नहीं लगाना चाहिए कि विज्ञान अधिक बढ़ गया है। उधर हमारी भाषाओं में व्यावहारिक साहित्य नये सिरे से शुरू हुआ है। ऐसी हालत में दो काम करने हैं, एक तो जो विज्ञान का विषय इन किताबों में आता है उससे चौकन्ना रहना होगा। मैं विज्ञान को प्रमुखता देता हूँ क्योंकि यह मेरा विषय है और विज्ञान में ही मेरा जन्म हुआ ऐसा कहा जा सकता है। इसी आधार पर हम नये विचार रखते हैं।

विज्ञान को भी भुलाया नहीं जा सकता

अभी हमने एक समाचार-पत्र में पढ़ा कि चोर हाथ मार दिये जाने

के कारण एक मनुष्य की आँतें निकल आयीं और वे टुकड़े टुकड़े हो बाहर आ गिरी थीं। उन्हें जोड़कर फिर पेट में लगा दिया गया है। उसकी हालत अब ठीक हो रही है। इसी प्रकार कल्पना की जा सकती है कि किसी मनुष्य का मस्तिष्क दूसरे के शरीर में लगा दिया जाय तो दूसरा शरीर भी उस प्रकार सोच सकता है जैसा पहले शरीर में सोच सकता था। यह देखने व समझने की बात है।

आप नये साहित्य के वातावरण में रहते हैं तो पढ़ सकते हैं। साहित्य का मनन करना चाहिए, खोज भी होनी चाहिए। जो कमी कोई आती हो, अस्पष्ट हो, उसे ग्रहण करना चाहिए और छोड़ने का भी काम करना चाहिए। इससे साहित्य अच्छा बनेगा।

विचार और कर्मों का संयम

सुबह जो बात हुई, उससे दुःख लगा। यहाँ रामायण का अधिक अध्ययन और मनन होना चाहिए। यह उस गाँव के लिए लज्जा का विषय है, जहाँ गंगा पास में बहती है। यहाँ दूसरी भी कई गड़बड़ियाँ हैं। आये दिन झगड़े मारपीट हुआ करते हैं। सात-सात, आठ-आठ साल की लड़कियों की शादी होती है। इसे रोकना जरूरी है। यह रामायण का अध्ययन और मनन न होने की वजह से हुआ क्योंकि जैसे ही विचारों की प्रक्रिया हमारे अन्दर होगी वैसे ही कर्म सधते हैं। इस वास्ते अच्छे साहित्य का अध्ययन आवश्यक है। दूसरी ओर विज्ञान का उपयोग भी जरूरी है। जीवन में इसका उपयोग खुले दिल से करना है विचारों की भी बात सोचनी है और उसका उचित नियम भी लेना है।

अनूपशहर (बुलन्दशहर)
२१-८-६

एक भावनावाले मिलकर प्रेम से काम करें

अगर हम एक विचार के हैं मतभेद पैदा होने पर भी वे गंभीर नहीं होते। अगर विरोधी हों तो वे गंभीर होंगे। हम सब जो यहाँ इकट्ठा हैं वे खादी गांधी-आश्रम तथा सर्वोदय के कार्यकर्ता हैं। उनमें मतभेद क्या है? पेड़ लगाने का क्रम है पर कौन-सा लगाना है यह तय होना है। तो दोनों अपना-अपना पक्ष रखते हैं। एक कहता है, पीपल का पेड़ लगाना है और दूसरा कहता है बरगद का। दो-दो चार-चार आदमी दोनों तरफ हो जाते हैं। जो प्रेम होता है वह टूटने लगता है। इसलिए हमें समझना चाहिए कि ऐसी स्थिति में यदि हम थोड़ा पीछे हट जायँ तो काम बन जायगा।

प्रेम से बढ़कर कोई ताकत नहीं ऐसा समझकर हम आगे बढ़ते हैं। यही शान्ति-सेना का विचार है। यहाँ थोड़े से ही शान्ति-सैनिक हैं। शान्ति-सैनिक के लिए स्वतंत्र सेवक चाहिए। उन्हें खड़ा करना हमारा काम है। यह नहीं कि किसी आदमी को गांधी-आश्रम में ले लिया गया और वह शान्ति-सैनिक बन गया। यह भी नहीं कि करणभाई को सौंप दिया काम कि निधि से इन्तजाम हो जाय। बल्कि जनता द्वारा समर्पण प्राप्त उन्हें स्वतंत्र रूप से खड़ा करना है। जनता के आधार पर उन्हें खड़ा करने में गांधी-आश्रम और निधिवाले मदद कर सकते हैं। पंजाब में हमें इसी प्रकार सफलता मिली। वहाँ तीन जमातों के लोग इकट्ठा हो सके हैं और एक विचार से सोचते हैं।

अपना-अपना अलग-अलग स्वधर्म होता है। खादीवाले कार्यकर्ता खड़े करें यह अच्छी बात है। पर स्वतंत्र भी खड़े हों ताकि हम कह सकें कि यह हमारा बायाँ हाथ है। दूसरा दाहिना हाथ। अन्यथा काम तो

ऐसा पर उसमें मैत्री भाव न रहेगा। एक नौकर होगा तो वह दूसरे को सम्मति देकर खड़ा करेगा और उसे मानना भी होगा। पर हम तो मैत्री के आधार पर सब दुनिया को लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं। इसलिए इसी प्रकार का प्रयास होना चाहिए।

दूसरी ओर चलाएँ तो हममें आपस में चलती ही रहती है। वे चलनी ही चाहिए। पर उस दिन हमने आप भाइयों की जो बात सुनी तो मुझे अपना बचपन याद आ गया। हम आपस में एक-दूसरे पर तोहमत लगाते थे। आपने क्या किया आपने क्या किया! ठीक है बच्चे और बड़े बराबर होते हैं। वे ऐसा कर सकते हैं और अक्सर ऐसा होता है। पर सिर्फ पेड़ लगाने का भेद है विचार एक ही है पेड़ लगाना। लेकिन भावना एक ही है तो मैत्री और मिलकर काम करना चाहिए। यह होगा, इसका मुझे विश्वास है।

सिवाई (बुलन्दशहर)
१४ ४ १

अपने को अच्छे कार्यकर्ता साबित करना है

टेनीसन की एक कविता है :

> "मैन मे कम मैन मे गो।
> बट आइ गो आन फारएवर।"

—एक झरना बोल रहा है। आदमी आये आदमी जाये, किन्तु मैं तो बहे जा रहा हूँ।

देह आती है देह जाती है; पर आत्मा बहती ही जा रही है—इस तरह यह आत्मा का भान करानेवाली कविता है। हम इस साल से खेल रहे हैं। इस साल पहले कुछ थे जो अब नहीं हैं—नये आये हैं। बीच में कुछ गिर पड़े रह गये, तो कुछ चले गये। पर हमारी यह यात्रा जो चल रही है इसमें कोई रुकावट नहीं हुई क्योंकि यह तो नदी का प्रवाह है। नदी है, जो बही जा रही है।

मेरा जीवन : गंगा-यमुना की धार

इस यात्रा का सम्बन्ध आत्मा से है। ज्ञान और [illegible] ज्ञान के बिना यह नहीं चलती। अड़चनें आती हैं। साथ छूटता है, पर काम को उससे क्या! उसे तो सतत बहना ही है। जहाँ तक कर्म का संबंध है सन् १९२१ से १९५१ तक मैंने निरन्तर ३० वर्ष तक एक ही काम किया। बहुत आकर्षण आये, पर उनमें टिका नहीं बल्कि काम में मन लगाया और मैं उसे करता ही रहा। इससे पहले जब मैं पढ़ता था तब भी अपनी धुन में पढ़ता रहा। तरह तरह के विषयों का हम अध्ययन करते थे। इस तरह हमारा जीवन गंगा-यमुना की तरह बहता रहा है। हमारे जीवन में ज्ञान

मन का जो प्रवाह है, वह है गंगा और जो दूसरा लोक-सेवा का प्रवाह है वह है यमुना। इस तरह गंगा-यमुना चलती ही जाती है। ध्यान देने की नौबत ही नहीं आयी कि कौन आया और कौन गया!

शरीर का महत्त्व क्यों?

हाँ यह बात जरूर थी कि यह शरीर बहुत कमजोर था। बापू के पास पहुँचा तो बहुत ही कमजोर था। हड्डियाँ निकली हुई थीं। इसके बाद अध्ययन-काल में जब इस बात का ख्याल हुआ तो शरीर को महत्त्व दिया लेकिन साथ ही नहीं भी दिया। ये दोनों बातें साथ-साथ कीं। यह शरीर नश्वर है, इस वास्ते उसे महत्त्व नहीं दिया। पर हकीकत है कुछ करना है, इस वास्ते महत्त्व भी दिया। यह शरीर कुछ है अगर सारेंगे, काम करेंगे तभी कुछ कर सकता है, सब सकता है—इस वास्ते इस शरीर की इज्जत भी बहुत की है।

नियमित आचरण विकास की कुंजी

यही कारण है कि यह अखंड यात्रा चल रही है। रात्रि को आठ बजे मापता होते ही सो जाता हूँ। किसी तरह यह कार्यक्रम नहीं बिगड़ता। सम्मेलन में यह क्रम कुछ टूटता अवश्य था क्योंकि वहाँ मुलाकातें अधिक हो जाते हैं, सो समय देना ही पड़ता था। लेकिन इसकी बार उसमें मैं गया ही नहीं तो क्रम चलता ही रहा। कोई आवे, कोई जावे, खाना हो पीना हो खाते-पिये मेरा क्रम चलता ही रहता है। सब नियम से है बरसातभर को है। जैसे मशीन में दिया जाता है। खुद उसकी माँग नहीं होती। अगर उसको काम देना है, तो वह देना ही पड़ता है। उसका अपना आग्रह नहीं रहता। प्रतिदिन चलता रहता हूँ, तो लोगों को मालूम होता है कि यह थकता नहीं थकता नहीं। अरे थकान आती ही नहीं। सिर्फ जब अधिक चलता हूँ तो थोड़ी हो जाती है; फिर भी काम चलता ही रहता है। काम

बोलता हूँ, समय से शरीर को आराम देता हूँ, इससे कोई शिकायत नहीं रहती। जिन लोगों ने मुझे दो साल पहले देखा है और आज देखते हैं कहते हैं 'इस आदमी की शक्ति बढ़ी है। ज्ञान की और शरीर की भी।" इसलिए मेरा विश्वास है कि अगर हम नियम से रहें, सब नियम से चलना रखें तो विकास अवश्य होगा।

एक दिन की जिन्दगी में बुराई क्यों ?

बचपन में एक गाना सुना था, वह याद है :

'दो दिन की जिन्दगानी !
दो दिन की जिन्दगानी प्यारे।'

हम कहते हैं दो दिन की जिन्दगानी नहीं बल्कि एक ही दिन की जिन्दगानी है। हम एक ही दिन गाँव में रहते हैं। जब एक ही दिन रहना है तो अपने में जो बुराई है उसे प्रकट क्यों किया जाय ? जो करता है अपने को साफ नहीं रख सकता वह मूर्ख है। बुराई उस व्यक्ति को पसन्द करती है, जो उसे मौका देता है। मौका पाकर वह उस व्यक्ति के पास रहने लगती है। वह कहती है, तुमसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति मुझे और कहाँ मिलेगा ? दूसरी ओर वह उस व्यक्ति के पास भी रहती है जो संत पुरुषों की निन्दा करते हैं। कहती है भाई, तुम निन्दा करते हो यह तुम्हें पसन्द है इससे हम भी तुम्हें पसन्द करते हैं। लेकिन, अगर कहीं एक ही दिन रहना है तो हम उसे अपने पास क्यों फटकने दें ? त्यागमय और तर्क बुद्धि तथा संयम से रहना बुद्धिमत्ता है। इस वास्ते जहाँ एक ही दिन रहना है तो वहाँ अपने को दबाकर रखना चाहिए। निष्फल जब श्रम का फल दे तो तकलीफ का भी सवाल नहीं आता। हरएक कार्यकर्ता को इन्द्रिय दमन करना चाहिए। अगर वह करेगा तो आप कुशल काम कर सकेंगे समर्थ होंगे।

यात्रा के लिए योग जरूरी

दूसरी ओर यह बहुत कठिन काम भी है। अगर कुछ दिन का हो, तो किसी तरह पथ भी सकते हैं। लेकिन यहाँ तो रोज ही चलना है। बारिश बरसेगी, धूप लगेगी, जाड़ा सतायेगा, मौसम बदलेगा। कोई भी छूट नहीं देगा। सब झेलना, यात्रा करते जाना है। बोलना है और फिर चलते ही रहना है। कभी अधिक बोलना, कभी कम बोलना। यह सब बिना योग के नहीं सध सकता, इस वास्ते योग भी चाहिए। सिर्फ मैं ही ऐसा नहीं करता, बल्कि मेरे साथ चलनेवाले भाई, मेरी देख-रेख करनेवाला सेवक, ये सभी नियम साधते हैं, क्योंकि उसके बगैर कैसे सधेगा? फिर मेरा जो सेवक है, उसे तो और भी अधिक साधना पड़ता है। वह मेरे बाद सोता है और ठीक तीन बजे उठता भी है। सब तैयारी भी रखनी पड़ती है, इस वास्ते *नियमपूर्वक समय से वो भी निद्रा वह ले लेता है।* अभी पिछले दिन की बात है, भोजन में देर थी, उसे तो जाना था। इसलिए वह रसोई में गया। पूछा : 'क्या तैयार है?' रोटी तैयार थी, तो उसे ही ले लिया और खा लिया। पानी और कुछ नहीं, तो कोई हर्ज नहीं। सतत काम करना है, तो नियम से सोना, जागना, उठना, शरीर को आराम देना सभी जरूरी है। जब सतत काम करना ही है, तो फिर छूट कैसी?

कार्यकर्ताओं पर मुझे नाज है [1]

कार्यकर्ताओं के रूप में सर्वोदय का काम करनेवाली जो जमात भूदान के कारण पैदा हुई है, वह एक अद्भुत जमात है। वह पहले नहीं हुई। मुझे खुशी होती है, नाज करता हूँ इन लोगों पर, जो घर-बार छोड़कर, उनकी अधिक परवाह न करते हुए, सतत काम में लगे हैं। इनकी संख्या दो-तीन हजार के लगभग है। यह बड़ी संख्या है। मैं मानता हूँ, बहुत

हूँ, जनता हमारे साथ है जो आगे चलके सब आपके साथ देनेवाले हैं। आज ऐसा दिखाई देता है कि लोग हमारे साथ नहीं कुछ क्या, सारे-के सारे उधर ही जाते हैं। पर नहीं ऐसा नहीं वे अपनी गति से चल रहे हैं। आज सब जो हो रहा है—तुम देखते हो सब संहार है जो गिरने ही वाले हैं। लेकिन अभी रह जायेगा जिसमें उत्साह होगा साधना होगी और जो आप उनके साथ होगा। समय उन्हें सबको बाध्य कर रहा है कि वे आपके विचार मानें। दूसरी ओर मनुष्य में गुण हैं। ज्ञान और साधना से अगर बढ़ जाये तो नर से नारायण तक पहुँच सकता है। आप लोग साधना करते रहें तो काम बनेगा। इसलिए काम के प्रसार के साथ-साथ आपको अपने को अच्छे-से-अच्छा कार्यकर्ता साबित करते चलना है।

भतौली (अलीगढ़)
२१ ४ ६

उपयोगी प्रश्नोत्तर

एक स्पष्टीकरण

प्रश्न : आपने कहा है कि आज के ज़माने में सरकार अव्वल नंबर की रचनात्मक कार्य करने की संस्था है। यह कहकर आप सरकार की इज्जत बढ़ाते हैं। पर ऐसी अयोग्य सरकार, जिसमें रिश्वतखोरी अनियमितता और सभी प्रकार के शोषण का बोलबाला हो उसका समर्थन हो जाता है, कृपया इसका स्पष्टीकरण करें।

उत्तर : जब मैंने कहा कि सरकार अव्वल दर्जे की रचनात्मक संस्था है तो उसमें सरकार की न प्रशंसा है न निन्दा बल्कि मैंने उसकी हैसियत बताई है। कुछ कम्युनिस्ट राज्य यही दावा करते हैं। उनके पास करोड़ों रुपए हैं। किसी संस्था के पास उतने साधन नहीं, जितने साधन सरकार के पास हैं। सरकार सभी तरह के रचनात्मक काम करती है। खादी उत्पादन का काम है वह सरकार कर रही है। जब तक सरकार चाहेगी यह काम चलेगा। जिस दिन न चाहेगी बंद हो जायगा। इसलिए स्वतंत्र जनशक्ति पैदा करने का काम है वह आप कर सकते हैं। जैसे गाँव-गाँव खादी खड़ी करनी होगी। हरिजन-सेवा का काम हृदय-परिवर्तन करना होगा। इसलिए रचनात्मक काम के निमित्त आपको अपना क्षेत्र चुनना होगा।

अनियमितता रिश्वतखोरी वगैरह दोष हैं। कोई भी सरकार हो, वह इन्हें दूर नहीं कर सकती। कर सकती तो वह सरकार अराजक भी होगी। वह इस मामले में नाकामयाब भी सिद्ध हो सकती है। इसके बावजूद हम भी हैं। हम आन्दोलन ही दूर कर लेंगे।

साढ़े नौ साल में भूमिका बनी

प्रश्न : भूदान-आंदोलन चलते करीब १० वर्ष हो रहे हैं, लेकिन वह जन-आंदोलन का रूप नहीं ले सका। जिस संगठन को उत्तम महापुरुष-स्थितप्रज्ञ नेतृत्व करने को मिला है, वह यदि जन-आंदोलन नहीं बन पाया तो इसके गर्भ में कहीं-न-कहीं बुनियादी कमी है। पर वह क्या है? मेरी समझ में इस बुनियादी कार्यक्रम में जनता के तात्कालिक प्रश्नों को छोड़ दिया जाता है।

उत्तर : भूदान को १० वर्ष हो रहे हैं फिर भी यह जन-आंदोलन नहीं बन पाया है, यह ठीक है। लेकिन छोटे-छोटे सवालों को लेकर हम काम करें, यह हमारा काम नहीं, यह लोक-क्रांति का काम नहीं, बल्कि राजनैतिक पार्टी का काम है। लोक-क्रांति का जो काम है, वह १० साल के बाद भी लोगों ने नहीं उठाया, यह ठीक है। आखिर स्वराज्य का आंदोलन भी लोगों ने कितनी दिक्कत से उठाया था। सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई। सन् १९१५ में गांधीजी आये। पाँच साल काम होने के बाद उन्होंने काम उठाया। सन् '२१ में उन्होंने कहा : "एक साल में स्वराज्य हो जायगा" पर लग गये २६ साल। तो कुछ समय लगता ही। फिर भी मेरा कहना है कि यह काम लगा। जब कि इसके पहले अरविन्द, तिलक सभी ने काम किया, जिसका बाद में लाभ हुआ। उसमें लाखों लोग सामने आये और तमाम प्रमुख नेता काम करते थे। स्वराज्य के बाद वे ही बहुत सारे नेता सरकार में गये। बचे कौन? तो मैं इसे ऐसा नहीं मानता। देखना यह है कि हमारा ९॥ साल का काम हुआ, उसमें कैसे लोग हैं। बेलगाम में सभी नेताओं ने कहा : 'ग्रामदान अच्छा काम है।" ९॥ साल में हमने भूमिका तैयार की है।

हमारे तात्कालिक कार्यक्रम

प्रश्न : आर्थिक लाभों के आविष्कार से युक्त होने की संभावना कम

हो गयी है इसलिए नहीं कि अहिंसा जैसे सिद्धांतों को सभी राष्ट्रों ने हृदयंगम कर लिया है। बल्कि दूसरे के विनाश के साथ अपना भी नाश होने का खतरा है ऐसी परिस्थिति पैदा हुई है। लेकिन दूसरी तरफ आर्थिक, सामाजिक क्षेत्रों में इस वैज्ञानिक युग में शोषण तीव्र गति से हो रहा है। यह तो हिंसा है ही और उसीसे लड़ाई झगड़े के रूप में हिंसा प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होती है। उसके निराकरण का तात्कालिक कार्यक्रम आपके पास क्या है?

उत्तर : तात्कालिक कार्यक्रम यही है कि भूमिहीनों को भूमि दिलवायी जाय। सभी राजनैतिक पार्टियों ने दावा किया है कि जमीन बाँटी जाय और सरकार ने भी दावा किया है। योजना-आयोगवालों ने मुझसे कहा कि सीलिंग के बाद ७-८ लाख एकड़ भूमि मिल सकेगी। उसमें भी रद्दी मिलेगी और मुकदमेबाजी चलेगी। हम कहते हैं जमीन बाँटें, शांति सेना बनायें, सर्वोदय पात्र का काम किया जाय। आप अपने शांति-सैनिकों की तरफ ध्यान नहीं देते। अगर यह कार्यक्रम कारगर नहीं होगा तो आपको सरकार में शामिल होना पड़ेगा।

अवतार से ही नहीं काम भी करना होगा

प्रश्न : आपने कहा है कि आज देश के सभी लोग कन्फ्यूजन में हैं। बल्कि यहाँ तक कहा है कि पृथ्वी जब पाप से भर गयी तो गाय का रूप धारण कर अपनी रक्षा के लिए भगवान् के पास गयी। वही स्थिति आज है। सर्वोदय-विचार आज एक अवतार के रूप में प्रकट है। लेकिन इस अवतार के बाद भी जनता के पास कन्फ्यूजन बढ़ते ही जा रहे हैं। फिर यह अवतार कैसा?

उत्तर : 'अवतार होगा तो सब दुःख दूर होंगे' यह एक निकम्मा विचार है। आखिर यह क्या है? अवतार कैसा? रावण मारा गया, तो उसे पहले तैयारी करनी होगी। अपना काम करते होंगे लोक-हृदय में प्रवेश करना

होगा। वोट मिलेंगे तो सरकार बनेगी। इसी भाँति हर पार्टी की बात है। पहले काम करना होता है।

कहा जाता है कि सरकार होगा तो सारे काम हो जायेंगे। पर मैं कहता हूँ नहीं, आपको काम करना होगा। रामचन्द्रजी का जब अवतार हुआ तो वानरों को भी काम करना पड़ा था। बन्दर भी जुटे थे, तब वे काम कर सके। इसलिए मेरा कहना है कि आप लोक-हृदय में प्रवेश करने का काम कीजिये। सफल होंगे तो अपने-आप मानस तैयार हो जायगा।

अलग-अलग सोचना हुआ

प्रश्न : केंद्रीय सरकार योजना-आयोग द्वारा देश के निर्माण की योजना बनाती है। यह योजना पूरी की पूरी केन्द्रीभूत है। दूसरी तरफ आपके मार्गदर्शन पर सर्व-सेवा संघ ग्राम-स्वराज्य को उद्देश रखकर एक विकेंद्रित योजना बनाता है। क्या ये दोनों प्रकार की योजनाएँ बुनियादी तौर पर परस्परविरोधी नहीं हैं। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। अगर सरकारी योजना गलत है तो देश हित के लिए उसे क्यों नहीं रोका जाता?

उत्तर : सरकार भी विकेंद्रीकरण की भाषा बोल रही है। सर्व-सेवा संघ के कथनानुसार योजना आयोग के कार्यों और शब्दों में फर्क किया गया है। अलग-अलग सोचना हुआ है। अब कैसे प्रसन्न हो गये हैं? अधिकार के लिए तो इतना हो चुका है कि सरकार बोल रही है कि ग्राम-पंचायत को पूरा-का-पूरा अधिकार देना चाहिए। जहाँ तक केंद्रीय राज्य व्यवस्था का प्रश्न है हम सब चुनकर सरकार बनाते हैं और उसके हम सब दोषी हैं।

लोकमत मिलना भी काफी है

प्रश्न : क्या यह सही है कि जब तक सामनेवाला व्यक्ति पूरा-पूरा साधु न हो जाय अथवा उसका हृदय-परिवर्तन न हो जाय तब तक उसके द्वारा

बड़ा का काम पस्त हुआ और जयप्रकाशजी को मैदान छोड़ना पड़ा। क्या यही हालत देश के सभी गाँव तथा अपने सर्वोदय के सभी क्षेत्र ऐसा में नहीं है? क्या आप इसे नहीं महसूस कर रहे हैं? अगर महसूस कर रहे हैं, तो उसके निराकरण का कौन-सा तरीका आपने सोचा है? यदि सोचा है तो देश के सामने क्यों नहीं रख रहे हैं?

उत्तर : अगर आप रचनात्मक काम करने जायेंगे, ग्रामदानी गाँव में अपनी शक्ति लगाकर सरकार की मदद से करेंगे तो अड़चन पड़ेगी। ऐसी हालत में सरकार की पोजीशन में आपके आदमी होने चाहिए। लेकिन कोरापुट में क्या हुआ? नवबाबू की पोजीशन में थे। वे होते, तो कोरापुट के काम में मदद मिलती। लेकिन उन्होंने सोचा कि समाज में क्रांति करने की जरूरत है। वे हटे तो आपने उनका गौरव किया। तो ऊपर की पोजीशन में आपके ही आदमी रहने होंगे। पर यह रास्ता दूसरा है। कोरापुट में जो हमने मार्ग अपनाया उससे अलग मार्ग। असल का काम उठाकर आगे बढ़ना चाहिए।

आपसी खिंचाव के रोड़े

प्रश्न : कार्यकर्ताओं का अभाव तथा उनमें आपस में भेद होने के कारण सामाजिक चेतना की कमी तो है ही, साथ ही सामूहिक कार्य का अभाव भी है। इसका क्या कारण है?

उत्तर : आपस में न बनने के दो कारण हैं। एक तो अहंकार हमारे अन्दर बैठा है कि हम क्रांति करनेवाले हैं और बाकी कुछ नहीं हैं। दूसरा बराबर काम करने के लिए कोई योजना नहीं है। योजना ऐसी बननी चाहिए, जिसमें सभी कार्य कर सकें। आज तो देखा यह है कि कार्यकर्ता काम करते हैं और उनका मन घर पर ही रहता है। जब काम होता है पक्का हुई कुछ हट भी जाते हैं। अतः योजना ऐसी चाहिए, जिससे कार्यकर्ताओं का मानस तैयार हो। दस-बीस लोग एक साथ बैठकर

'आध्यात्मिक मित्रमण्डलों' का मर्म

प्रश्न : आपने आध्यात्मिक मित्र मण्डली बने ऐसी इच्छा प्रकट की है। इसका क्या स्वरूप होगा?

उत्तर : छोटा स्वरूप यह होगा कि मान्य कार्यकर्ताओं में परस्पर के लिए अनुराग और प्रेम होना चाहिए। काम काम के लिए इकट्ठा होते हैं प्रेम के लिए नहीं। अगर काम के साथी रहें तो वह शक्ति नहीं बन सकती, जो ईसा की थी। ईसामसीह के ११ शिष्य थे। उन्होंने अपना एक 'कम्यून' बनाया। परस्पर खाते थे, प्रेम से साथ रहते थे और एक के बाद एक फाँसी पर भी लटक गये।

आध्यात्मिक मित्र मण्डल का मतलब है, १०-२ आदमी एक साथ सोचने-विचारने के लिए बैठे हैं अनुराग-स्नेह हो बार-बार मिलते रहें। यही उसकी भूमिका है। पर मैं कहता हूँ, एक बात और हो कि एक-दूसरे के लिए मर-मिटने को तैयार रहें। तब आध्यात्मिक मित्र मण्डल का काम पूरा होगा। मैं सोच रहा हूँ कि लोक-सेवकों के लिए एक बात और जोड़ दूँ। पाँच-छह शर्तें हैं पर एक छठवीं और रखूँगा। वह यह कि जो मर मिटने को तैयार हो वही लोकसेवक बन सकता है।

—उत्तरप्रदेश-कार्यकर्ताओं के बीच श्री बहुगुन-भाई द्वारा किये गये प्रश्नों का उत्तर।

शाहपुर (अलीगढ़)
१०-७-६

ये मर्यादाएँ मानवता के स्पर्श के रोड़े !

यह आम-सी बात है कि लोग श्रेणियाँ बना लेते हैं। ब्राह्मण ऊँचा है। उसका काम पूजा-पाठ–पढ़ाना है और वह गुरु है। इसी भाँति क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की बात है। क्षत्रिय अगर एक ब्राह्मण को बचाने के प्रयत्न में मारा जाता है तो ब्राह्मण को कभी शरम नहीं मिलेगी। क्योंकि वह मानता है कि क्षत्रिय का धर्म रक्षा करना है तो वह मरा। हमारे लिए क्या ! कोई विशेष अनुसरण नहीं करता। श्रेणियाँ बनी हैं, एक दूसरे की प्रेरणा नहीं ले पाता मानो एक दूसरे से ज्यादा मतलब ही नहीं। अगर कोई संन्यासी है तो उसके घर में अपरिग्रह होना चाहिए। ऐसा हो तभी वह संन्यासी है। संग्रह करने का अधिकार वैश्य का है। बचाना और रक्षा करना क्षत्रिय का काम है। इस प्रकार 'वाटर टाइट कम्पार्टमेण्ट' दीवार-सी खड़ी हो जाती है।

सत्य को भी लोगों ने बाँट दिया है। उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं। कहा जाता है कि सत्य का इतना पालन इतनी मर्यादा तक चले, तो वह गृहस्थ। अगर कोई संपूर्ण सत्य का पालन करता है तो संन्यासी है। माना जाता है कि युद्ध का समय हुआ तो उसमें सत्य का पालन करना चाहिए बाकी में चाहे न हो। इसी भाँति एकादश व्रतों की बात है।

मुझे ऐसा लगता है कि इस तरह कुछ मर्यादाएँ बाँधकर मानो हमने यह प्रबन्ध कर रखा है कि सबको मानवता का स्पर्श न हो। इसके मानी यह कि संन्यासी और हम गृहस्थ के बीच दीवार खड़ी है। वह अलग, हम अलग। हम उसका अनुसरण नहीं कर सकते। परिणामस्वरूप एक का सुपरिणाम दूसरे के पास नहीं आ पाता। होना तो यह चाहिए कि मानवता का जो समान अंग है वह सबके लिए समान हो। आप इस पर जोर दें या मत दो। लेकिन ऐसा बन गया है कि इसके विपरीत किसी विशेष धर्म पर जोर दिया जाता है और मानवता के समान अंश पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता।

ही होंगे, ऐसा माना जाता है। वे यह विषय पढ़ायेंगे, वे थोड़ी देर पढ़ायेंगे और वे अधिक देर तक, यह भी चलता है। इसका असर उन मास्टरों पर पड़ता है। लेकिन अगर मास्टरों में ही इस तरह भेदभाव रखा जाय, तो बच्चों पर इसका क्या असर पड़नेवाला है, हम उन्हें तालीम क्या दे सकेंगे?

शुरू करके कह रहा हूँ

हमने एक सभा में पूछा था : जो चलती ट्रेन को झंडी दिखाता है क्या स्टेशन मास्टर से उसका काम कम महत्त्व का है? फिर दोनों में भेदभाव क्यों? दोनों की तनख्वाहों में इतनी कमी-बेशी क्यों? इस पर विचारना ही होगा। हमने भेदभाव की जो यह बड़ी दीवार खड़ी कर रखी है, उसे तोड़ना होगा। कब तोड़ पायेंगे? सब एक हों मिलजुलकर काम करें। एक स्थान पर सब इकट्ठा कर दें। जितने मार्ग एक साथ रहते हों सब उस सभा में ले आने हैं। कहेंगे, यह संभव नहीं बाबा तो ऐसा कहता ही है। यह धरती पर नहीं चलता। पर मैं कहता हूँ कि यह सब मैं कर चुका हूँ। *इसीलिए कह रहा हूँ। गांधीजी के आश्रम में हमने ये प्रयोग किये और वे* सफल भी हुए हैं। इसलिए आपको यह करना ही चाहिए।

दोनों एक ही रास्ते पर

केरल में मैं घूम रहा था तो इसाइयों ने यह कहकर कि 'विनोबा ईसा के पदचिह्नों पर चल रहा है', मेरा शानदार स्वागत किया और मुझे सहयोग भी दिया। लेकिन मेरी मालकियत-विसर्जन की बात उन्हें समझ में नहीं आयी। कारण इसके लिए वे क्रूस मानते हैं और उसे पवित्र भी। मैंने कहा : अगर उसका कोई त्याग करता है, तो वह और पवित्र है। उन्होंने इसे मान तो लिया पर कहा कि 'यह मुश्किल है'। मैंने पूछा : 'मुश्किल तो जरूर है पर क्या ईसा के अनुयायियों ने इसका कभी प्रयोग किया?' वे इस नहीं कर पाये और इस विचार में फेल हो गये। तो जो चीज फेल हो गयी उस धर्म का इतना व्यापक प्रचार हो और हमने

अपना सुदृढ़ संगठन बनाइये

कल शाम का व्याख्यान आप लोगों ने सुना ही है। वह बात पहली मरतबा नहीं सुनाई बल्कि बार-बार दोहरा रहा हूँ। हम समझते हैं इतना दोहराते हैं तो शक्ति बढ़ती है। चिन्तन-शक्ति पर यह निर्भर करता है। अगर चिन्तन बढ़ा तो शक्ति बढ़ती है। इसलिए हमारा चिन्तन सम्यक् होना चाहिए।

तत्त्वज्ञानियों ने हमें सिखाया है कि पहले निश्चय करो कि हम कौन हैं? जब निश्चय नहीं होता तो हम हर काम में पछीटे खाते हैं। काम तो करते हैं पर काम सधता नहीं। लेकिन जो अपना साधन समझते हैं वे बराबर उसी रास्ते पर चले जाते हैं। वे सोचते हैं आज नहीं तो कल दूसरों को इस पथ पर आना ही है।

मैं कहता हूँ विनाशकाल जानेवाली है टूट रही है। यह दूर स्वप्न है। यह देख रहा हूँ कि विनाशकाल टूट रही है क्योंकि वह जोर मार रही है। जब किसीका टूटना होता है तो वह जोर मारता है। आज विनाशकारी जोर लगा रहे हैं आज परस्पर-विरोध होते हुए भी आपस में टकरा रहे हैं इसलिए विनाश की तैयारी होनेवाली है। अगर लोगों को यह समझ आ जाय तो ठीक है। लेकिन वह नहीं हो रहा है, क्योंकि वे एक प्रवाह में बह गए हैं। अगर मैं भी उनके साथ होता तो जोर से कूदता और उसीमें बहता। लेकिन मैं किनारे खड़ा हूँ कमजोर हूँ। बलवान् भी अगर प्रवाह में पड़ता है तो डूब जाता है। पर कमजोर किनारे पर खड़ा है तो वह सुरक्षित रहता है इसलिए मेरे जैसा व्यक्ति खड़ा-खड़ा ही यह देख रहा है।

प्रेम की जमात बनाइये

इसीलिए हम कहते हैं कि हम जो छोटे हैं उनकी एक जमात होनी चाहिए। हम कमजोर हैं छोटे भी हैं और प्यार भी नहीं करते तो क्या होगा? हम टिक न सकेंगे। तभी हमने कल कहा कि हमें 'कम्यून' बनाना चाहिए। आज मुझसे पूछा गया कि यह कम्यून कैसे बनाया जाय? यह प्रेम के आधार पर होगा। जो लोग दो-दो चार-चार वर्ष तक रहे हैं वे एक साथ रहने पर एक-दूसरे के दोषों पर अभिमान करें। यह नहीं कि दोष देखें दोष देखें पर अभिमान करें और कहें कि इतना होते हुए भी हम मिले हुए हैं गर्व कर रहे हैं। जैसे माँ का गौरव होता है। बालक सुन्दर है नाक सीधी सरल है, तो कोई बात नहीं पर माँ का बालक सुन्दर न हो नाक टेढ़ी हो तो वह क्या करे? टेढ़ी नाक होने पर भी वह उसका गौरव ही करती है। गणेशजी की नाक टेढ़ी थी तो भी भक्तगण उनका गौरव ही करते हैं।

एक-दूसरे को निभाते चलिये

हम चाहते हैं कि चार-छह कार्यकर्ता जो एक-एक जिले में काम कर रहे हैं, एक साथ हो जाने चाहिए। एक भाई ने कहा कि ऐसा नहीं होता। मुझे उनके अन्दर का पता नहीं। ऊपर जो कहते हैं उसीसे पता लगता है। मैंने पूछा: 'विवाहित लड़की के अन्दर का पता नहीं लगता तो क्या होता है?' बोले: 'निभाना होता है।' शादी हुई निभायी गयी। नहीं निभायी गयी तो अब कानून में भी तलाक की व्यवस्था है। अलग हो सकते हैं। लेकिन लोग ऐसा करने में संकोच करते हैं। तलाक लेने की कोशिश नहीं करते बल्कि निभाने का ही प्रयत्न करते हैं। कारण, अग्नि को साक्षी देकर शादी हुई है।

दूसरी ओर शादी होती है आदमियों में भी। हनुमान् ने सुग्रीव की शादी राम से करायी। दोस्ती की शादी थी वह। जब मिले दोनों ने और

यह ठीक है कि मैंने जो काम किया उसकी जिम्मेवारी मुझे मिली इज्जत भी मिली। पर मेरे मन में, धर्म की दृष्टि में जिम्मेवारी, इज्जत तब रहती जब लोगों के पास भी कुछ जिम्मेवारी न मिलती। मैं कहता कि क्या हुआ? कुछ परिणाम नहीं निकला, तो भी मैं किये जा रहा हूँ। गीता के कर्मयोग की तरह हूँ—करता हूँ। यह कहकर घमण्ड करता। पर दूसरे तो ऐसा नहीं करते। जिम्मेवारी मिल गयी इस वास्ते इज्जत भी मिली तो मैं अब एक कदम आगे बढ़कर पूछता हूँ कि किसे प्रारम्भिक सदस्य बनावें? यह आपको बताने हैं। किस तरह बनें? होता क्या है? हम कहते हैं कि यह पसन्द है मगर वो पहचानता नहीं सदस्य कैसे बनावें? यह नहीं होना है। इस काम में हमें उनका सहयोग मिलना चाहिए। फिर यह हमारी समस्या है कि उनका उपयोग कैसे करें? उस सदस्य को किस तरह साथ रखने में समर्थ हो सकें? हमें उसे अपना स्थिर सदस्य ही मानना है इससे अधिक नहीं।

क्या इतना सहयोग भी कम?

अब आता है संगठन का स्वरूप। आपके यहाँ बहुत सारी रचनात्मक काम करनेवाली संस्थाएँ हैं। वे आपको सहयोग देंगी। गांधी-आश्रम है जिसके द्वारा खादी में काम करनेवाले हैं और भी दूसरी संस्थाएँ हैं। इनके जरिये सर्वोदय-पात्र के माध्यम से घरों में हमारा प्रवेश हो। गांधी-आश्रम और खादीवालों का संगठन काफी बड़ा है इससे मदद लें।

पंजाब में मैंने ल्यालीराम से पूछा: 'आपका प्रवेश कितने गाँवों में है?' उन्होंने बताया: 'आठ हजार गाँवों में प्रवेश हो गया है।' मैंने कहा: 'यह बहुत अधिक है। अब हर गाँव में ५० घरों में प्रवेश करें। सर्वोदय पात्र रखे जायँ। उनका साधारण इन्तजाम हो। आप उनको काम एकत्र कर कर सर्वोदय-संघ को सिखावें। यह एक संगठन है जो हजार घरों में आपका प्रवेश करता है। संगठन का यही रूप होगा। आप सुप्रतिष्ठित

हैं कि सारी रचनात्मक संस्थाएँ आपके सहयोग के लिए तैयार हैं। उनके सहयोग से आपको अपना आधार—संगठन बना लेना चाहिए। कम्युनिस्ट केरल में अल्पमतवाले थे इसलिए उन्होंने वहाँ 'सेल' बनाये। यह अकल की बात है। उनका राज्य बना अधिकार मिला मौका हाथ आया तो उसका उपयोग उन्होंने अपने आधार के लिए किया। ऐसा ही करना चाहिए। इसलिए मैं खादीवालों से भी कहता हूँ कि आप भी प्रयास करें आपके पास संगठन की शक्ति और सहूलियत है। उसके आधार पर फायदा उठाओ। अन्यथा पता नहीं यह सहूलियत आपको हमेशा मिलती भी रहेगी या नहीं कायम रहनेवाली भी है या नहीं ! यह जरूरी नहीं कि जो भी सरकार आये, वह ये सहूलियतें कायम रखे। आप ज्यादा-से-ज्यादा जनता में प्रवेश कर ताकत बना लें। यह आप सबके लिए जरूरी है। इस वास्ते अगर सर्वोदय के वास्ते 'सेल' बनें तो प्रेरणादायक होगा। क्योंकि यह ऐसा प्रवाह ही है कि कुछ खास शब्द प्रेरणा देते हैं।

दूसरी बात मैं कहता हूँ कि अपना स्वधर्म समझ लेना चाहिए। जो स्वधर्म है वह करें। इसके विपरीत अगर 'तू-तू मैं-मैं' चला तो हम अपनी शक्ति खण्डित कर देंगे। मैं कहता हूँ कौन-सी शक्ति का संचय करनेवाले हो ? वह होगी प्रेम की सहयोग की भाईचारे की और पारिवारिक भावना की।

सभी सर्वोदय-पात्र रखें

पंजाब की एक बात है। पंजाब में दरबारा सिंह कांग्रेस में हैं। उन्हें (   ) रुपयों की थैली मिली। उन्होंने उसे बाबा को देकर अधिक-से-अधिक प्रतिष्ठा अर्जित कर ली। मैंने सोचा यह कितना बढ़िया है। जब कांग्रेस के लोग ऐसा कर सकते हैं तो और कोई क्यों नहीं ? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कांग्रेसवाले भी सर्वोदय-पात्र रखें प्रजा-समाजवादी भी और अपने आप दे दें। वह आपस में एक-दूसरे के दरम्यान जहाँ

बनेंगे पर हैं वे आपके काम में। वे दोनों सहयोग देंगे। हर हालत में आपका फायदा है।

लोग कहते हैं, सर्वोदय के काम में दबाव नहीं आना चाहिए। ठीक है, यह सर्वोदय का उसूल है। पर मैं दबाव से कहाँ काम लेता हूँ? मैं लोगों से कहता हूँ कि आप पर दबाव नहीं आप सहयोग दीजिये। जब राष्ट्रपति ने अपने घर में सर्वोदय-पात्र रखा तो हर घर में रहना चाहिए, तभी राष्ट्रपति की इज्जत होगी। मतलब, आप हर काम दबाव कानून और शक्ति से ही करना पसन्द करते हैं? अगर पाकिस्तानवासी कानून व शक्ति की बात यहाँ होती तो क्या होता? मैं इस प्रकार लोगों खास तौर पर कांग्रेसवालों को समझाता हूँ। तब वे मानते हैं स्वीकार कर लेते हैं कि हर एक को सर्वोदय-पात्र रखना चाहिए। हमारे लिए सभी हमारे कार्यकर्ता हैं।

मेरे सम्मुख प्रश्न आया कि सैनिक हो सकता हूँ या नहीं? शान्ति के काम के लिए फौज का मनुष्य भी सर्वोदय का पात्र रख सकता है। यह मैंने निर्णय किया। क्योंकि सैनिक राष्ट्र का होता है, अपना नहीं। इसलिए जब उसका व्यक्तिगत विषय है तो वह शान्ति-सैनिक के लिए स्वतन्त्र है। सर्वोदय पात्र रख सकता है। इसी भाँति पण्डित नेहरू भी शान्ति-सैनिक हैं। हमारे एक कार्यकर्ता ने उनसे बनावटी पास पर दस्तखत कराकर उन्हें शान्ति-सैनिक बना लिया है। वे खुद इस बात को स्वीकार करते हैं। मैं खुद पण्डितजी को 'सपोर्ट' कर चुका हूँ—दो संयम्बे व्याख्यान देकर। लोगों ने कहा : 'यह क्या ?' पर मैंने कहा : 'हम पर तो सभी पाबन्दियाँ लागू होती हैं। पर दूसरे जितना स्वीकार करते हैं, वही उन पर लागू होती है। उन्हें स्वीकार का अपना आदमी स्वीकार करने में क्या हर्ज है? यह स्वीकार कर लेना चाहिए।

बाजीराबाद (अलीगढ़)
२९-८ ६

छोटी बातों में शक्ति गँवाना ठीक नहीं

कार्यकर्ताओं की कई चर्चाएँ ऐसी होती हैं, जो सर्वोत्तम-विचार के अनुकूल नहीं होतीं। वे माँग करते हैं कि कई विषय ऐसे हैं, जिनका निषेध हमें करना चाहिए। मेरे विषय में उनकी शिकायत है कि मैं आलोचना करता हूँ, तो सौम्य भाषा में। नहीं तो करता ही नहीं। मेरे विषय में यह शिकायत सही है। जब बहुत जरूरत होती है तभी मैं किसीकी टीका करता हूँ और वह भी सरल शब्दों में। योजना-आयोग के बारे में मैंने ऐसी ही आलोचना की थी। शेष में और भी प्रश्न आये जिनपर मैंने या तो सौम्य आलोचना की या नहीं ही की। यह मेरी कमजोरी भी हो सकती है या फिर ताकत। अपनी आलोचना करूँ या नहीं यही मैं सोचता रहता हूँ। दूसरे अगर दूसरे को 'बस' करें तो वे कर नहीं पायेंगे।

मैं दीवार के रास्ते क्यों घुसूँ?

मेरी व्यक्तिगत बात छोड़ दीजिये। अहिंसा और नैतिक आन्दोलन का एक बहुत बड़ा गुर लेकर मैं अभावात्मक चिंतन नहीं करता वरन् बहुत समझाता हूँ। दोषों का उच्चारण और उनकी चर्चा नहीं करनी चाहिए ऐसा नैतिक आन्दोलन चलानेवाले मानते हैं। जहाँ जो गुण है उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। क्योंकि गुणों को ग्रहण किया नहीं दोष खत्म हो जाते हैं। जब दोष देखते और उन्हें कह देते हैं तो वे बढ़ जाते हैं। विपरीत इसके जब दोष नहीं देखते तो फिर गुणों के जरिये उसके अन्दर प्रवेश कर हम उसका मन पकड़कर उसके दोष दूर कर पाते हैं। दोषों के जरिये किसीके अन्दर प्रवेश करना कठिन है। मैं दीवार के भाग से मकान में क्यों प्रवेश करूँ, जब कि दरवाजे और खिड़कियों से प्रवेश मेरे लिए खुला हुआ है।

मेरे कार्यकर्ता नहीं समझते कि यह एक बहुत बड़ा नैतिक आन्दोलन हमने खड़ा किया है। यह छोटी-छोटी बातों से सम्भव नहीं। हमें छोटे-छोटे आन्दोलन में पड़कर अपनी शक्ति क्षीण नहीं करनी है। अगर शिकायतें और तकलीफें होती रहें और उन्हें सरकार दूर करती जाय तो उससे सरकार को पक्का मजबूत होती जायगी। जितनी अच्छी सरकार होगी हमारा काम उतना ही कठिन होगा। कारण, तब शासनमुक्त समाज कैसे बनेगा? आप सरकार के पंजे में हैं और सभी संतुष्ट हैं। लेकिन सरकार खराब भी हो सकती है। अकबर के राज्य की मिसाल हमारे सामने है। वह बहुत अच्छी सरकार थी। फिर भी संकट आया और अब भी संकट आनेवाला है ऐसा मानना पड़ेगा।

हिंसक लड़ाई में भी अहिंसक रवैया, तो ?

हमें छोटे-छोटे मसलों पर अपना बहुत अधिक दिमाग और शक्ति नहीं लगानी चाहिए। यह काम करनेवाले तो बहुत-से लोग हैं। तुलसीदासजी ने भी कहा है रामायण में—बाँधने को तो बहुत हैं पर छुड़ानेवाला सिर्फ राम ही है। इसका यह मतलब नहीं कि हमें सेवा नहीं करनी चाहिए। सेवा अवश्य करनी चाहिए, ऐसी सेवा जिसमें 'पाजिटिव फोर्स' जागृत होती जाय। ऐसा हो कि आपको कोर्स से ही हम आपको खतम करना चाहते हैं।

महाभारत की घटना है। महाराज युधिष्ठिर भीष्म के पास पहुँचे प्रणाम-वन्दन किया। भीष्म खुश हुए। फिर भीष्म से पूछा गया कि पिता मजी आपकी मृत्यु किस प्रकार होगी कृपाकर बताइये। इस प्रकार किसी भी महाकाव्य में नहीं आया। भीष्म पितामह ने बता दिया कि किस तरह मेरी मृत्यु होगी। बाद में देखा गया कि उन्हें मारने के लिए जितने ही रास्ते अपनाए गये, पर कोई सफल नहीं हुआ। इस तरह हिंसक लड़ाई में भी उन्होंने यही अहिंसक रवैया अपनाया। फिर हम तो अहिंसक आन्दोलन ही छेड़े हुए हैं। तब हिंसक रवैये की ओर क्यों जायें? हमें अपने विरोधियों

और सहभागियों के अन्दर प्रवेश कर पूछना चाहिए कि तरीका क्या हो सकता है। इस प्रकार हम सफल होंगे इसमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं। मैं इसी बात को दृष्टि में रखकर नेताओं और बड़े-बड़े लोगों से बातें करता हूँ जो मुझसे मिलते हैं।

यह मेरी दृष्टि !

यह मेरी दृष्टि है, जो मैंने आपके सामने रख दी। मैं नहीं जानता कि इससे आप लोगों का कहाँ तक समाधान होगा। फिर भी वस्तुस्थिति यही है, यही मेरा दृष्टिकोण है। हमें छोटी-छोटी बातों में पड़कर अपनी शक्ति नहीं गँवानी है। अब मैं इस बारे में इतना ही कह सकता हूँ। वह भी तब जब कि कार्यकर्ता बार-बार मुझसे पूछते हैं।

सामग्री ([illegible])
२ ० १

दूसरी आश्चर्य की बात यह है कि जितने नयी उम्र के लड़के हैं, वे अहिंसा की फिक्र करते हैं। बुजुर्ग उतनी नहीं करते जितनी वे करते हैं। यह अच्छा बात है कि ऐसे लोग जबान से उसका पालन नहीं कर पा रहे हैं। यह पहले के जमाने से उल्टा है। चीन के मामले में हमने क्या देखा? बुजुर्गों में इस प्रकार का विचार पाया गया कि अहिंसा से हम उसके मुख तक टिक नहीं सकते इस वास्ते हिंसा का भी सहारा लेना चाहिए। पर युवकों में ऐसा नहीं बना। आप यह सकते हैं कि वे आपस में लड़ते हैं। उनकी जबान पर काबू नहीं रहता, पर यह अच्छा बात है। फिर भी युवकों की जो यह ताकत है, भावना है, उसे कायम रखना है। यह जिम्मेदारी बुजुर्गों को निभानी है।

बुजुर्ग अब जवानों को न कसें

तीसरी बात मैं आपसे कहने जा रहा हूँ। पूर्णचन्द्र जैन का सर्वोदय-सम्मेलन का अनुभव मैंने पढ़ा। उसमें उन्होंने लिखा कि "इस बार सेवाग्राम सम्मेलन १९ नहीं २१ पड़ा है।" यह अच्छी बात है। मैंने यह इसलिए आवाहन किया था कि परिणाम देखें कि हम कहाँ हैं। मैं सोचता था कि अगर आध्यात्मिक रूप नहीं निकला तो समझूंगा कि भगवान् पक्ष में नहीं है। लेकिन एक आध्यात्मिक निकला। नवयुवकों का विचार महत्त्वपूर्ण है। क्या कि उनमें अहिंसा सोचने-समझने की अच्छी शक्ति है। वे अच्छा रह के बढ़िया तरीके से सोच सकते हैं। मेरा कहना है कि बुजुर्ग जवानों को आगे न कसें। अब उनकी परीक्षा नहीं लेनी है। वे खरे उतरे हैं।

नयी जमात का स्वागत हो

हाँ बुजुर्ग कह सकते हैं कि कर्यों पान पीता है, क्या कार्यकर्ता है! दूसरी बात सादगी की है। गांधीजी के समय सादगी अधिक दिखायी गयी थी। वह जोश था पुराने लोगों का। पर अब बारीकी की बात आती है। समय बदला है साथ साथ लोग भी बदले हैं। आज लोग देखते हैं कि

खादी कितनी अच्छी, कितनी बारीक है। पर पहले यह सोचा जाता था कि इस नम्बर के सूत की धोती कौन पहनेगा? यह जनसाधारण समाज के लिए उपयुक्त समझी गयी क्योंकि महीन पहनने में शोभा का सवाल था। खादी माने मोटी ऐसा ही लोग मानते थे। लेकिन आज तो ऐसा नहीं है। परिस्थिति बदली है। आज युवकों के लिए तेल, साबुन टायलेट की बात आती है। बड़ों को पुरानों को यह अखरता है। लेकिन जब हम सोचें अगर पुराने समय का ऋषि आ जाय तो हमारी आँखों पर ऐनक देखकर पकड़ा जायगा कि परमेश्वर की दी हुई आँखों पर इसने यह पत्थर क्या लगा कर रखा है? वह सोचेगा कि यह क्या इसे जन्म से है या ऊपर से लगाया गया है। उसे मानने में मुश्किल होगी कि यह मेरे बच्चों के बच्चे हैं।

कहने का मतलब यह कि पुराने लोगों को इसे बरदाश्त करना चाहिए। पुराने लोगों का यह नया अवतार है। राम ने बजायी नहीं बाँसुरी पर कृष्ण ने बजायी। तो राम को कृष्ण को देखकर न जाने कैसा लगे? हमारी बात तो ठीक है। हम दोनों को मानते हैं। पर वे एक दूसरे के सामने हों तो न जाने कैसा लगे? फिर गौतम बुद्ध का अवतार आया। उन्होंने बाँसुरी भी छोड़ी धनुष-बाण भी छोड़ा हम तरह नये-नये अवतारों में सब कुछ बदलता है। इसलिए यह सोचना चाहिए कि जवानी में ये लोग काम करते हैं तकलीफें उठाते हैं सम्भव है मो पैदल गये थे। (क्योंकि अंदेशा था कि गाड़ी में भी बैठ सकते हैं)—इनमें इतनी निष्ठाएँ हैं। इसलिए मेरा कहना यह है कि नये समाज का उत्तम स्वागत होना चाहिए।

दोष युवकों का नहीं, आदत का

मैं देखता हूँ कि नये मनुष्य का मन क्या है? चाहता क्या है? उसके अन्दर क्या है? सामान्य हूँ नये लोग हैं अदरजोर हैं। इन्हें तालीम दनी है पर अदर के साथ देनी है। इन्हें कई बातों की जानकारी नहीं है या

भी देनी है। गांधीजी ने सख्ती से सिखाया था कि पैसे का उपयोग कैसे करें। पर अगर कांग्रेस में नये-नये लोग आते हैं ढेर सारे पत्र लिखते हैं अधिक खर्च करते हैं तो पाँच-सात रुपये का खर्च आ ही जाता है। इन बातों में बापूजी बहुत सतर्क थे कंजूसी से हिसाब-किताब रखते थे। तीस रुपये में माहवार चलाना पड़ता है इसकी वह चिन्ता और जोड़-तोड़ रखते थे। लेकिन अब स्थिति बदल गयी है। इसकी जिम्मेदारी किस पर? मानना पड़ेगा कि हम ही पर है। पहले जो लोग सादगी से रहते थे नेता बन गये, तो अब वैभव प्रकट होता है। सब में उदार हो गये हैं। अधिक पैसा नहीं है फिर भी क्या हुआ! आज यह दोष तो राष्ट्रीय दोष बन गया है। इसलिए कार्यकर्ताओं से अगर पैसा अधिक खर्च हो जाता है, तो कम ध्यान देने की जरूरत है।

मेरी अपनी बात

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मेरी बात अलग है। मेरा मन गांधीवाला कंजूस मन है। मेरा एक तार आया था। मैं चाहता तो उसका उत्तर तार से दे सकता था। पर उसका उत्तर ठंडे दिमाग से देना है। इसके वास्ते इतमीनान से चिट्ठी लिखी गयी। यह कंजूसी नहीं वृत्ति का सवाल है। क्योंकि यह आता कहाँ से है। गरीबों के पास से न? इसलिए इसका ध्यान रखना चाहिए।

सारांश अगर कार्यकर्ता यत्न नहीं कर पाते तो इसमें उनका दोष नहीं आदत का दोष है। उसे सुधारना चाहिए। यह बात मैंने आपके सामने रखी। पहले बहुत चर्चा कर चुका हूँ। तत्त्वज्ञान की बातें कही हैं। आज सोचा कि व्यवहार की चर्चा भी करूँ इसलिए ये बातें सामने रखीं। बस इतना ही।

हाथरस
१ ५ ६

स्त्रियाँ आगे आयें !

अभी मैं बहनों से बातें करता था। इन दिनों मेरे मन में जो विचार बार-बार आया करते हैं उनमें एक यह भी है। 'स्त्री-शक्ति' पर मेरी जो किताब है उसमें से यह विचार आता है 'क्या बात है कि प्रेम और त्याग क्षेत्र में स्त्रियों ने पुरुषों से अधिक शक्ति दिखायी है !' यह भी लगभग निश्चित है कि संयम की शक्ति भी पुरुषों से अधिक स्त्रियों में है। जहाँ तक त्याग, प्रेम और संयम इन तीनों शक्तियों का स्त्री से सम्बन्ध है यह ठीक ही है। पर समझता हूँ कि समाज-रचना बदलने का काम भी स्त्री कर सकती है। स्त्रियों की ओर से हिन्दुस्तान में जब कभी प्रयास हुए, तो मीरा, अहिल्या बाई आदि हो गयीं जो अच्छी भक्तिनें थीं। पर समाज-रचना बदलने का प्रयास नहीं किया गया। आज तक उनमें ऐसी वृत्ति नहीं थी, पर अब उसे आना ही होगा।

यह खतरनाक बात !

आज स्त्री-पुरुषों के काम बाँट दिये गये हैं। बाहर का काम पुरुष देख लेते हैं और घर का स्त्रियाँ सँभालती हैं। हम देखते हैं कि स्विट्जरलैंड में स्त्रियों को वोट देने का अधिकार ही नहीं है। वहाँ वे उसे माँगती ही नहीं। वह एक सभ्य मुल्क है और समझा है वहाँ की स्त्रियाँ हमारी धार्मिक नीति को माननेवाली हैं। वे वोट देने के विचार को मामूली-सा विचार मानती होंगी और हमारा काम बड़ा है, यह अच्छी तरह समझती होंगी। इस सम्बन्ध में मैं अधिक क्या कह सकता हूँ। लेकिन यहाँ समाज का जो आकार दिया जाता है वह पति के जरिये, पुत्र के जरिये दिया जाता है। लेकिन आज जब विज्ञान ने विध्वंसक शक्तियाँ मनुष्य के हाथ में दी

हैं तब उनका इस्तेमाल पुरुष ही करें और उसमें स्त्रियाँ दखल न दें तो इसे मैं खतरनाक मानता हूँ।

सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों का यह अकाल!

उत्तर प्रदेश की बात सोचता हूँ, तो यही स्थिति देखता हूँ। अब तक मैंने जिक्र भी किया है कि यह दुनिया का पाँचवाँ राष्ट्र है। अमेरिका, रूस, चीन और जापान ही इससे बड़े होंगे। लेकिन यहाँ कितनी स्त्रियाँ दिखाई देती हैं? सारे प्रदेश में काम करनेवाली दो-चार स्त्रियाँ होंगी। सुचेता बहन का नाम बार-बार लिया जाता है, पर वह इस प्रदेश की नहीं हैं। ऐसा कोई नाम बताइये जैसे विमला ठकार, जो स्वतन्त्र विचार से काम करती है। कुल हिन्दुस्तान में १०-१२ स्त्रियाँ हैं जो काम कर रही हैं। निर्मला देशपांडे आजकल सेक्रेटरी है, यह हमारा गौरव है। उसकी मुझसे माँग की गयी तो मुझे स्वीकृति देनी पड़ी है। कारण जब वह रहती तो मुझे चिन्ता ही नहीं थी। मैं क्या सोचता था, यह मुझसे अधिक वह याद रखती थी।

आध्यात्मिक क्षेत्र के भी बन्धन तोड़े जायँ

आखिर भारत में अधिक तादाद में स्त्रियाँ क्यों नहीं दिखाई देतीं? क्योंकि यहाँ ब्रह्मविद्या पर पुरुषों का ही एक अधिकार और अंकुश रहा है। स्त्रियाँ इसमें अयोग्य मानी गयी हैं। वे अधिक तादाद में ब्रह्मचारिणी नहीं मिलेंगी। बीच में वेद आदि पढ़ने की भी उन्हें मनाही रखी गयी थी। या ब्रह्मचारिणी हो भी जातीं, समाज उन्हें मान्यता देने को तैयार नहीं था, बल्कि शक और बुरी निगाह से ही उन्हें देखा गया। इसीलिए मैं कहता हूँ कि यह जो बात है उसे तोड़ना होगा। नये मूल्य स्थापित करने होंगे। 'नरनारी भद्र है' यह ठीक है। पर बीच के जमाने के पंडितों ने यह क्या लिख डाला कि स्त्रियों में अधिक नरक के भेद हैं, नर को ही मुक्ति मिल सकती है? इसका असर समाज पर बहुत बुरा पड़ा है। अतएव ही समाज की ये अवस्थाएँ आज हुई पड़ी हैं। आज ऐसी मान्यताएँ

नहीं रहीं। स्त्रियाँ वोट दे सकती हैं, चुनाव में खड़ी हो सकती हैं और मंत्री बनकर शासन भी कर सकती हैं। धर्मनिरपेक्ष विचार सब स्त्रियों के लिए खुल गया है। कोई अड़चन नहीं रही। सांसारिक क्षेत्र में उन्हें जो बंधन थे वे दूर हो गये हैं और कुछ जो बचे हैं वे दूर हो जायेंगे। फिर भी पर आध्यात्मिक क्षेत्र में उन पर जो बंधन हैं उन्हें तोड़ना ही पड़ेगा।

अधिकार दिया नहीं, लिया जाता है

यह काम स्त्रियों को स्वयं ही उठा लेना होगा। ऐसे अधिकार दिये नहीं जाते, बल्कि लिये जाते हैं। बाप से पुत्र अधिकार लेता है और दिये भी जाते हैं। जब अधिकार नहीं मिलते तो पुत्र उदासीन होने लगते हैं। ऐसी मिसालें इतिहास में बहुत हैं। पर आध्यात्मिक अधिकारों के बारे में गुरु शिष्य में ऐसा नहीं होता। वहाँ अधिकार लिए जाते हैं दिये नहीं जाते। नानक की मिसाल हमारे सामने है।

बौद्धिक प्रतिभा का विकास करें

स्त्रियों को ऐसा लगे कि पुरुषों ने आज की यह समाज-रचना गलत और एकांगी की है, तो बदलने की उन्हें इससे अवश्य प्रेरणा मिलेगी।

मुझसे दसगुनी ताकत हासिल करें

प्रश्न है कि आज मैं ऐसा कैसे सोचता हूँ। स्पष्ट है कि आज मेरे मन और मस्तिष्क पर कोई बंधन नहीं। मैंने सब कुछ छोड़ रखा है, इसी लिए इस तरह स्वतंत्र चिंतन करता हूँ। अधिक तादाद में हम पुरुष ही यहाँ बैठे हैं और इस प्रकार विचार कर रहे हैं पर सच्चाई यह है कि यह मेरे मन में है। मेरे मन में जो आता है वही मैं कहता हूँ। भय और संकोच मुझमें नहीं है। जिस हालत में यह मुझमें है, अगर किसी लड़की में हो और कोई लड़की ऐसा करे, तो समाज उसे सहन नहीं करेगा बल्कि पग-पग पर उसमें रुकावट डालने का प्रयत्न करेगा। इससे यह भी जाहिर है कि अगर कोई लड़की मुझसे दसगुनी ताकत रखेगी तभी यह इतनी प्रखर हो सकेगी। इसलिए स्त्रियों को चाहिए कि वे स्वास्थ्य-रक्षण पर ध्यान तो दिया करें पर कम ध्यान दिया करें और प्रखर बुद्धि को बढ़ाने का सतत प्रयत्न किया करें। मैं समझता हूँ कि ऐसा करने पर वे समाज-रचना बदलने में सफल हो सकती हैं।

चान्दवारा
१-५-'६

राम की टोली में कोई निन्दक नहीं

इस बार जब हम मथुरा आये थे, तो उत्तर प्रदेशवालों ने एक संकल्प किया था—पाँच लाख एकड़ जमीन का। उसमें से काफी पूरा हुआ है कुछ जमीन बाँटना बाकी है। कुल मिलाकर काम कम नहीं माना जायगा। १८ अप्रैल को भू-जयंती में हैदराबाद के गवर्नर भीमसेन सच्चर ने कहा था : 'अब तक हिंदुस्तान में आठ लाख एकड़ जमीन बँटी होगी, यह बहुत बड़ा काम हुआ है। लोग भी कहते हैं कि 'यदि सरकार भी सीलिंग द्वारा जमीन बाँटने का प्रयत्न करे, तो भी १ लाख एकड़ से अधिक जमीन नहीं मिलेगी। फिर जो जमीन मिलेगी उसका मुआवजा देना पड़ेगा कोर्ट में भी जाना होगा और खर्च भी बढ़ जायगा। इसलिए भूदान में जो हुआ वह बहुत अच्छा हुआ। हमने करोड़ का जो संकल्प किया था वह निष्ठा के रूप में था। पर यह आपके लिए उज्ज्वल है, जहाँ तक आप पहुँचे हैं।

पाँच एकड़ का मूल्य ?

मैंने एक किसान से पूछा : 'आपको जिंदगी में समाधान है ?' उत्तर मिला है 'मैं तो मजदूर हूँ, खेतों में काम करता हूँ। मेरे एक बेटा है। पैसा बचाकर मैंने ५ एकड़ जमीन खरीदी है। मर गये तो बेटे के पास रहेगी। इसलिए समाधान है। साधारण किसान पेट काटकर जोड़ता है और समाधान पाता है। उधर बिहार के एक कांग्रेसी जमीन मालिक को १५ एकड़ जमीन मिली। पर उन्हें लगा कि यह कुछ नहीं। वे सिर्फ एक दिन घूमे थे बाकी ३६४ दिन दूसरे काम किये, इसलिए मानते थे कि जमीन कम पायी। समाधान नहीं हुआ। मैंने उनको किसान की

अव्यक्त रूप से रहती हैं। जो ग्रहण करने योग्य हो उसे वे मिलती हैं। वे आक्रमण नहीं करतीं जैसे कि एटम बम। लेकिन बम गिरता है, तो उसमें किसीकी मरजी नहीं चलती बल्कि सब पर उसका असर पड़ता है। ये आध्यात्मिक शक्तियाँ हम पर उतना ही असर डालती हैं जितना हम चाहते हैं।

आध्यात्मिक ग्रंथों का स्वाध्याय जरूरी

हमारे कार्यकर्ता उत्तर प्रदेश में मिलते हैं पंजाब में मिलते हैं तो मैं पूछता हूँ कि क्या आपने रामायण का अध्ययन किया है, गुरुग्रंथ-साहब का अध्ययन किया है? वे कभी 'ना' कहते हैं तो मैं पूछ बैठता हूँ कि फिर आपको शक्ति कहाँ से मिलती है? सर्वोदय-साहित्य पढ़ा जाय यह ठीक है। इससे काम करने की रीति मालूम होगी। किन्तु यदि आन्तरिक, आध्यात्मिक शक्ति समाज से नहीं मिली तो हम समाज से अलग पड़ जायँगे। लेकिन हम समाज के बीच रहना चाहते हैं। इसलिए हम जिन जिन प्रदेशों में जायँ वहाँ के आध्यात्मिक साहित्य का हमें अध्ययन करना चाहिए। हम यहाँ गये वहाँ के लोगों ने हमें कबूल किया। काश्मीर का मुस्लिम समाज तमिलनाड का द्राविड़ समाज—दोनों दूर-दूर और अलग अलग हैं। पर काश्मीरियों ने देखा कि यह कुरान के लिए तन्मय है। द्राविड़ ने देखा कि यह 'तिरुकुरल' का भाविक है। यह नामुमकिन है कि हर स्थान के आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन हो। फिर भी जायें जहाँ, वहाँ के साहित्य का अध्ययन कर सकते हैं। इसलिए मैं उम्मीद करूँगा कि जिस मथुरा से सबको प्रेरणा मिलती है वो हमें भी मिलेगी। मथुरा से प्रेम की धारा बही वो हम उसका उपयोग नहीं करेंगे तो कैसे चलेगा?

आध्यात्मिक परिवार में कमी क्या?

आज भरतभाई कहते थे कि हम — [illegible] हैं। सभी अगर एक परिवार बन सकें, तो काम चलेगा। पर मैं कहता हूँ कि जो यहाँ पाँच

पचास लोग हैं उनका एक आध्यात्मिक परिवार बनने में कौन-सी ताकत कम पड़ेगी ? यहाँ काशी है यहाँ प्रयाग है यहाँ अयोध्या है, यहाँ मथुरा है यहाँ हरिद्वार है यहाँ पुरी है और यहाँ ऋषिकेश है और हिमालय गंगा और यमुना है—या यहाँ तुलसीदास कबीरदास हैं यहाँ आध्यात्मिक परिवार बनाने में कौन-सी कमी है ? हमें एहसास होना चाहिए कि हम इनकी छत्रछाया में हैं। यहाँ सारे नाम चाहते हैं जिनके कदमों पर चलें। एक नाम कहना भूल गया। बहुत बड़ा नाम है यह—गौतम बुद्ध का जो आपके प्रदेश से जुड़ा है। हम पाँच-पचास लोग जुटे हैं तो एक-दूसरे को प्यार से देखते, जैसे कि गोपियाँ कृष्ण को प्यार करती थीं। साथ-साथ जानते थे कि हम गोपाल के साथ ही हैं। आपसमें हनुमान आदि में मनमुटाव रहते थे तो स्वयं रामजी समझाते थे। लक्ष्मण कितना गुस्सा करते थे। भरत जैसे भी कहने को तैयार हो गये। पर रामजी ने उन्हें कभी कमतर नहीं किया बल्कि सदैव उनका गौरव किया। सुग्रीव जैसे स्वार्थी कामी भी मिलेंगे पर रामजी की टोली में कोई उनकी निंदा करने वाले नहीं थे। बल्कि सबने गौरव ही किया। तुलसीदास ने ऐसी कुशलता से पात्रों का चित्रण किया है कि किसीको भी नीचे नहीं गिरने दिया। 'रावण और कुम्भकर्ण का भी होना जरूरी है'—यह कहकर उनका भी उन्होंने गौरव किया। रावण न होता तो राम किसके साथ लड़ाई करता ? कहने का मतलब यह कि हम रामजी कृष्णजी और गौतम बुद्ध का काम करनेवाले हैं।

बैर न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप विषमता खोई॥

रामराज्य का वर्णन है कि किसीका किसीसे बैर नहीं विषमता नहीं। यही काम हम करने जा रहे हैं। हमारा काम ही यह है कि हम निर्वैर बनें परस्पर विरोध और द्वेष न हो विषमता न रहे। समानता हो सह

वे एकरूप हो सकते हैं। दूसरी मिसाल यह थी कि जो अपने विचार पर अड़े रहते हैं उन्हें भी हम साथ में रखते हैं। ये सारी चीजें अपने में रखो, तो सामाजिक एकता आयेगी।

आप सब लोग सत्त्वगुणप्रधान हैं। हम कह सकते हैं कि हम रामकृष्ण की भूमि पर खड़े हैं इसमें सत्त्वगुण प्रधान है। यहाँ बैठी हुई दो लड़कियाँ गुजरातभर में घूमती हैं। घरबार, नौकरी माता-पिता सब छोड़कर आयी हैं। सारे गुजरात के देहातों में घूमती और 'भूमिपुत्र' के ग्राहक बनाती हैं। तो क्या उनमें त्याग की भावना कम है? दूसरी ओर कुछ जवान बैठे हैं वे भी सब छोड़कर आये हैं। हम कहते हैं कि इससे अधिक कुशल योग्य परिवार हमें नहीं प्राप्त हो सकता। हमारी योग्यता के आधार पर हमें बहुत योग्य परिवार मिला है। हो सकता है, इससे योग्य परिवार हो। पर हमारी योग्यता इतनी ही है। जो मिला वही बहुत है।

अहादाबाद
३-५-६१